योगविद्या

वर्ष 4 अंक 10
अक्टूबर 2015
सदस्यता डाकखर्च – रु 100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2015

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 58 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर फोटो : स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, दिल्ली, 2014

अन्दर के रंगीन फोटो : 1-4: स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती की दिल्ली योग यात्रा, 2014

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

सत्पुरुषों का सत्संग

'सत्संग' शब्द 'सत्' और 'संग' से मिलकर बना है। 'सत्' का तात्पर्य सृष्टि के सार तत्त्व ब्रह्म से है। हमेशा प्रभु के साथ रहना या ब्रह्म में स्थित होना सत्संग शब्द का शाब्दिक अर्थ है। जब तक अज्ञान या अविद्या रहती है, तब तक ब्रह्म का साक्षात्कार सम्भव नहीं है, लेकिन जब विवेक के द्वारा अज्ञान का नाश हो जाता है, तब वास्तविक स्वरूप अपने आप सामने आ जाता है। यही सर्वोच्च सत्संग है।

सत्संग का तात्पर्य सत्पुरुषों के संग से भी है। सत्पुरुषों के संग के माध्यम से ही ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। सत्पुरुष वे हैं जो सत्य का दर्शन कर चुके हैं। जिनमें समदृष्टि, सन्तुलित मन एवं प्रभु के प्रति अटूट श्रद्धा का विकास हो चुका है, वे सत्पुरुष हैं। जिनमें शान्ति, आनन्द, सन्तोष, सरलता, निर्भयता, नम्रता, ओजस्वी वाणी है और जिनका तेजस्वी चेहरा है, वे सत्पुरुष हैं। सत्पुरुषों का तेज ब्रह्म के समान ही अनन्त और शाश्वत होता है।

–श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर-811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद-121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 4 अंक 10 · अक्टूबर 2015
(प्रकाशन का 53 वाँ वर्ष)

विषय सूची

यह विशेषांक स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती की 2014 भारत योग यात्रा के अंतर्गत आयोजित दिल्ली योग महोत्सव को समर्पित है

4 वृत्ति-प्रबंधन के लिए यम और नियम
14 शिवानन्द दिग्विजय
19 मंत्रों का सार्वभौमिक प्रभाव
24 योग की महिमा
31 योग की विकास-यात्रा
36 गुरु की शिल्पकारी
40 दिल्ली से सत्यम्-संदेश
43 मानव जीवन के पड़ाव
46 ध्यान और मंत्र
49 कल्पतरु की छाँव में

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

वृत्ति-प्रबंधन के लिए यम और नियम

स्वामी निरंजनानंद सरस्वती

हमारे गुरुजी के अनुसार योग का प्रयोजन आध्यात्मिक वृत्ति की जागृति है और इस प्रयोजन हेतु चित्तवृतियों का निरोध आवश्यक होता है। महर्षि पतंजलि अपने योग-सूत्रों में वृत्तियों के विषय में बतलाते हैं–'*वृत्तय: पंचतय्य: क्लिष्टाक्लिष्टा:। प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृत्य:।*' मतलब पाँच प्रकार की वृत्तियाँ होती हैं जो क्लिष्ट अर्थात् दु:खदायी और अक्लिष्ट अर्थात् सुखदायी, दोनों तरह की होती हैं। ये पाँच वृत्तियाँ हैं–प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति।

वृत्तियों की व्याख्या

पहली वृत्ति है प्रमाण जिसका अर्थ है पुष्टि। बुद्धि और तर्क को पुष्टि की आवश्यकता होती है, लेकिन श्रद्धा और अंतर्नुभूति को पुष्टि की आवश्यकता नहीं

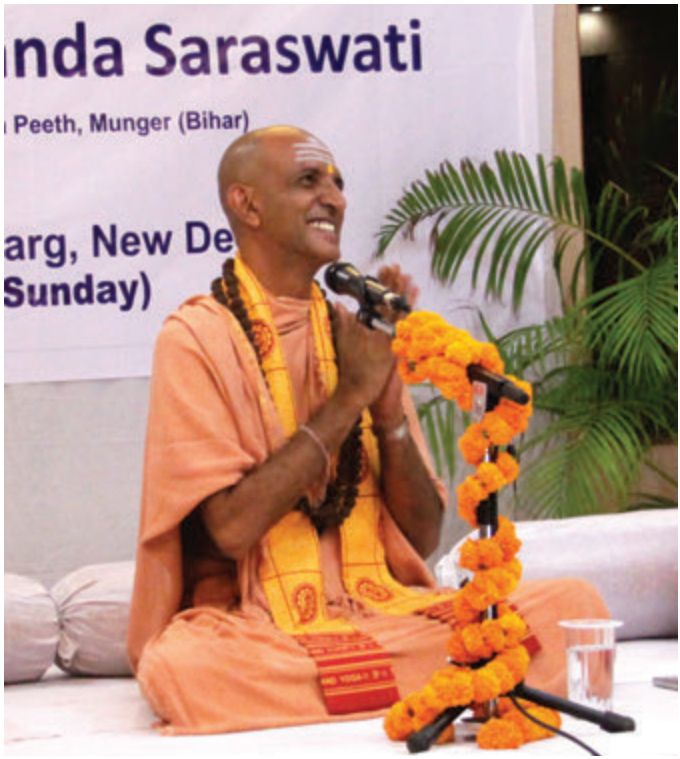

होती। प्रमाण एक परिस्थिति, चिंतन और घटना की पुष्टि की प्रक्रिया है। दूसरी वृत्ति है विकल्प। विकल्प में द्वन्द्व होता है, क्या करूँ, क्या नहीं करूँ, यह उचित है या अनुचित है, यह करना चाहिये या नहीं करना चाहिये। मनुष्य समझ नहीं पाता है। दो मार्ग हैं, किस मार्ग पर हम चलें, उसे कहते हैं विकल्प।

तीसरी वृत्ति है विपर्यय जिसका अर्थ होता है भ्रांति। मान लिजिए तीन लोग हैं, उनमें से दो व्यक्ति एक-दूसरे को देखकर मुस्कुराते हैं तो तीसरा व्यक्ति सोचता है कि वे दोनों मेरी हँसी उड़ा रहे हैं। इसको कहते हैं विपर्यय। जो चीज नहीं है, उसे हम अपने ऊपर आरोपित कर रहे हैं। दो लोग किसी अन्य कारण से हँस रहे हैं, लेकिन तीसरे ने सोचा कि वे मुझ पर ही हँस रहे हैं। इस परिस्थिति में दु:खी कौन होता है? जो सोचता है कि मेरी हँसी उड़ाई जा रही है, वह दु:खी हुआ। मतलब भ्रांति के कारण दु:ख की उत्पत्ति होती है।

चौथी वृत्ति है निद्रा जिसका अर्थ होता है संबंध-विच्छेद। जब मन-मस्तिष्क पर इन्द्रियों और संसार का दबाव बढ़ जाता है तब इच्छा होती है कि कुछ समय उनसे संबंध-विच्छेद कर लें। अगर आप कुछ समय कोलाहल में रहते हो तो उसके पश्चात् शान्ति पाने के लिये कुछ समय चुपचाप बैठना चाहते हो, एकान्त में बैठना चाहते हो, लोगों से अलग होकर रहना चाहते हो। निद्रा भी वही स्थिति होती है, विषयों की संलग्नता से मन को अलग कर देना ताकि मन शांति को प्राप्त कर सके।

पाँचवी वृत्ति है स्मृति। स्मृति को समझाने के पूर्व मैं एक बात स्पष्ट करना चाहता हूँ। योगसूत्रों में *चित्तवृत्तिनिरोध:* कहा गया है, बुद्धिवृत्तिनिरोध:, मनोवृत्तिनिरोध: या अहंकारवृत्तिनिरोध: नहीं कहा गया है। योग दर्शन में कहा जाता है कि अंत:करण की चार अभिव्यक्तियाँ हैं–बुद्धि, मन, चित्त और अहंकार। बुद्धि के द्वारा ज्ञान होता है और मन के द्वारा चिंतन-मनन। मन के बाद हैं चित्त और अहंकार। अहंकार के बारे में समझाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि हम सब जानते हैं अहंकार क्या होता है। अब प्रश्न उठता है कि चित्त क्या है। चित्त हमारे अंत:करण का एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ पर पूर्व की स्मृतियाँ जमा रहती हैं। चित्त को अनेक जन्मों की स्मृत्तियों का भण्डार कह सकते हैं।

स्मृति ऐसी वृत्ति है जो हर व्यक्ति को पकड़ लेती है। इससे कोई भी व्यक्ति स्वयं को मुक्त नहीं कर पाता है। स्मृति का सम्बन्ध पूर्व काल से रहता है, इसलिए जब कभी कोई स्मृति आपके मानस-पटल पर उभरती है तब वह आपके मन और चेतना को पूर्वकाल में ले जाकर बाँध देती है जिसके कारण आप आगे की ओर नहीं देख पाते हैं। जब आप अपने प्रियजनों का ख्याल करते हो तो उनके बचपन का ख्याल आता है कि वे बचपन में कैसे थे। आपका मन भूतकाल में चला जाता है और वहाँ पर उस स्मृति में रम जाता है। जब मन भूतकाल से जुड़ जाता है तब वर्तमान को भूलता है, इसीलिये स्मृति को वृत्ति कहा गया है।

स्मृतियाँ अच्छी और बुरी, दोनों तरह की होती हैं। लेकिन लोग प्राय: अच्छी स्मृतियों को सम्भालकर नहीं रख पाते हैं जबकि बुरी स्मृतियों को सहजतापूर्वक अपना लेते हैं। मनुष्य दु:ख के क्षणों को हमेशा याद रखता है, पर सुख के क्षणों को बहुत जल्दी भूल जाता है। जो सुख के क्षणों को याद रख सकता है और दु:ख को भूल सकता है वह व्यक्ति अपने जीवन में हमेशा प्रसन्न रहता है। और जो व्यक्ति सुख के क्षणों को भूल जाता है और दु:ख से अपना नाता जोड़ता है उसका हाल तो आप जानते ही हैं। इन स्मृतियों को भी वृत्ति कहा गया है जिनका उद्गम क्षेत्र होता है, चित्त। महर्षि पतंजलि कहते हैं कि इन सभी चित्तवृत्तियों का निरोध होना चाहिये, जो आपके मन को विचलित कर देती हैं।

ब्राह्मी वृत्ति

हम अगर सभी चित्तवृत्तियों का निरोध कर देंगे तो क्या होगा? क्या हम इस संसार में आधारहीन रह सकते हैं? कभी नहीं। वृत्ति का होना आवश्यक है। जब हम पाँचों वृत्तियों का निरोध कर देते हैं तब छठी वृत्ति का जन्म होता है जिसे हम ब्राह्मी वृत्ति या आध्यात्मिक वृत्ति कहते हैं। इस आध्यात्मिक वृत्ति का अर्थ होता है—जीवन में उत्तमता को प्राप्त करना। यह वृत्ति आपको संसार के सुख-दु:ख से मुक्त करके शान्ति के साम्राज्य में स्थापित कर देती है।

महर्षि पतंजलि द्वारा वर्णित क्लिष्ट और अक्लिष्ट अर्थात् सुखदायी और दु:खदायी वृत्तियाँ सांसारिक वृत्तियाँ हैं। इन सांसारिक वृतियों का निरोध करके हम अपने अंदर आध्यात्मिक वृत्ति को जागृत कर सकते हैं। इसके लिये यम और नियम का पालन आवश्यक होता है।

यम

योग दर्शन में चौबीस यमों और चौबीस नियमों की व्याख्या है, लेकिन महर्षि पतंजलि ने केवल पाँच यमों—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह एवं ब्रह्मचर्य तथा पाँच नियमों—शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान की ही व्याख्या की है। इनको समझना आवश्यक है क्योंकि यम तथा नियम से स्वयं को जानने की प्रक्रिया आरम्भ होती है। हमलोगों के योग महोत्सव का मूल विषय भी 'स्वयं को जानो' है। स्वयं का जानने के लिए अर्थात् आध्यात्मिक जागृति के लिए सबसे पहले अपने जीवन में नकारात्मक वृत्तियों को सकारात्मक वृत्ति में परिवर्तित करना आवश्यक होता है।

अहिंसा—पहला यम है अहिंसा, मतलब हिंसा का अभाव। हिंसा केवल शरीर से नहीं, मन से भी होती है। अगर हम किसी का बुरा सोचते हैं तो वह हिंसा है। हम अपनी नकारात्मकता का प्रसारण उस व्यक्ति की ओर करते हैं जिसके बारे में

हम बुरा सोच रहे हैं। हमारा चिंतन एक तरंग के रूप में वातावरण में फैलता है। आप या हम जो भी सोच रहे हैं वह सूक्ष्म तरंग के रूप में इस वातावरण में व्याप्त हो रहा है, भले ही हम उसे देख नहीं पाते हैं। जिस तरह हमारे वातावरण में रेडियो की भी तरंगें हैं, लेकिन बिना रेडियो के हम उन तरंगों को पकड़ नहीं पाते, उसी तरह हमारे विचार ऊर्जा-तरंगों के रूप में यहाँ व्याप्त हो रहे हैं। जो उन्हें पकड़ता है वह इन विचारों को अपने भीतर धारण करता है और हो सकता है कि विचारों की तामसिकता या सात्त्विकता से वह प्रभावित भी होता हो।

आप किसी कमरे में किसी अजनबी व्यक्ति के पास पहुँचते हैं तो कभी अच्छा लगता है और कभी नहीं। आपने कभी सोचा है कि जिस व्यक्ति को हम जानते नहीं हैं, उसके पास पहुँचने पर अच्छा क्यों लगता है या वहाँ से तुरन्त हट जाने की इच्छा क्यों होती है। इसलिए कि आप उसके विचारों को, उसके मन के वातावरण को ग्रहण कर रहे हैं। अगर वह व्यक्ति शान्त है तो उसके पास जाने पर आपको अच्छा अनुभव होता है। अगर व्यक्ति उत्तेजक और अशान्त रहता है तब आपको आभास हो जायेगा कि इसकी ऊर्जा मेरे अनुकूल नहीं है।

यह सब ऊर्जा के सम्प्रेषण की वजह से होता है। देखा जाए तो हमलोगों का पूरा शरीर ऊर्जा से ही बना हुआ है। पदार्थ भी ऊर्जा का ही घनीभूत रूप है। अगर आप अपने शरीर को एक सुपर-माइक्रोस्कोप से देखियेगा तो त्वचा, रक्त, मांस-मज्जा और हड्डियों के भीतर परमाणु की संरचना को देखियेगा और उस परमाणु में ऊर्जा का कंपन दिखाई देता है। यहाँ जो भी लोहा, लकड़ी या कपड़ा पड़ा है, अगर आप उनकी आण्विक संरचना को देखियेगा तो वहाँ पर पदार्थ नहीं, ऊर्जा दिखलाई देगी।

जब कहा जाता है कि हिंसा की वृत्ति समाप्त हो जाए तो उसका यही अर्थ होता है कि आप अपने कर्मों, विचारों और शब्दों के द्वारा न किसी की बुराई करें, न किसी को क्षति पहुँचाएँ। सहजता और शान्ति को अपनाकर अपने आपको हिंसा की वृत्ति से मुक्त रखें। हिंसा की वृत्ति को समाप्त करने का सरल उपाय है, समझ। अगर समझ है तो हिंसा नहीं है, अगर समझ नहीं है तो हिंसा प्रचुर मात्रा में है।

सत्य–दूसरा यम है सत्य। सत्य के बारे में कहा जाता है–*सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्,* अर्थात् सत्य कहना चाहिए और ऐसा कहना चाहिए कि दूसरे को बुरा न लगे। इसका एक उदाहरण देता हूँ। एक बार किसी राजा ने एक ज्योतिषी को बुलाया और कहा कि मेरा जन्मपत्री देखो। ज्योतिषी पत्री देखकर कहता है, 'महाराज! ऐसी पत्री तो मैंने आज तक नहीं देखी। इसमें लिखा है कि आपके जीवन-काल में ही आपके कुल का नाश हो जायेगा और आप अकेले रह जायेंगे।' यह सुनकर राजा क्रोध से आग-बबूला हो गया और बोला, 'इसे जेल में डाल दो, कहता है कि मेरे कुल का नाश हो जायेगा!' फिर किसी दूसरे ज्योतिषी को बुलाया गया। उसने पत्री देखकर कहा, 'महाराज, ऐसी पत्री तो मैंने आज तक नहीं देखी। आपकी आयु इतनी लम्बी है कि आप अपने संतानों से भी अधिक जीवित रहेंगे, अपने पोते-पोतियों से भी अधिक जीवित रहेंगे।' दोनों ने तो एक ही निर्णय दिया, लेकिन एक ने कहा अप्रिय तरीके से और दूसरे ने कहा प्रिय तरीके से। इसलिये सत्य बोलना भी एक कला है जिसे कहते हैं वाक्-पटुता।

सत्य का दूसरा रूप भी होता है और वह है अपने जीवन को आडम्बर से मुक्त करना। जब तुम आडम्बर रहित जीवन व्यतीत करते हो, तब चैन और शान्ति मिलती है। अपने आपको आडम्बरों से मुक्त करने के लिये और अपने व्यवहार को अनुकूल बनाने के लिए अपने जीवन में सत्य को स्थान देना आवश्यक है।

अस्तेय–तीसरा यम है अस्तेय। सामान्यत: लोग अस्तेय का अर्थ समझते हैं चोरी नहीं करना, लेकिन यहाँ पर अस्तेय का तात्पर्य होता है कि संग्रहवृत्ति को स्वयं से दूर करो। मनुष्य का स्वभाव संग्रहकारी है और जब हम संग्रह करते हैं तो हमारे संग्रह में तरह-तरह की मान्यताएँ, विश्वास और मोह जुड़ जाते हैं। मान लीजिए आपके पास ऐसी कलम है जो आपके परदादा ने आपको दी हो। उससे आप भावनात्मक रूप से इतने आसक्त हो गए हैं कि कलम के काम नहीं करने के बावजूद आप उसे आज तक फेंक नहीं पाये हैं। मोह के कारण मनुष्य संग्रह करता है और संग्रह का निदान है दान।

उपनिषदों में एक कहानी आती है कि देवताओं, दानवों और मनुष्यों के प्रतिनिधि एक बार परमपिता परमात्मा से मिलने जाते हैं। उनके वहाँ जाने का प्रयोजन होता है परमपिता से यह पूछना कि हमलोगों के जीवन का उद्देश्य क्या है, हमें क्या करना चाहिये। तीनों प्रतिनिधि ब्रह्मलोक की यात्रा करने के लिये अपने समाज

से निकलते हैं। लेकिन रास्ते में वर्षा होने लगी और तीनों यात्री एक गुफा में छिप गए। बादलों में घोर गर्जना हो रही थी, बिजली चमक रही थी, घनघोर वर्षा हो रही थी। तीनों प्रतिनिधियों ने सोचा कि इस वर्षा में हम ब्रह्मलोक की यात्रा तय नहीं कर पायेंगे। चूँकि वे एक संकल्प के साथ निकले थे इसलिए ईश्वर ने सोचा कि मैं इन्हें कुछ संदेश दे दूँ तो उन्होंने बादलों की विशेष गर्जना से अपना संदेश दे दिया।

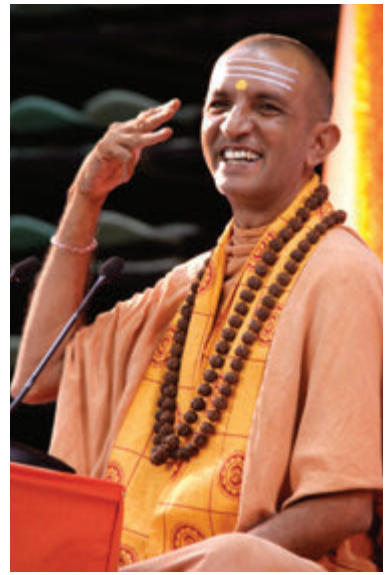

इन तीनों प्रतिनिधियों ने सोचा कि हमें परमपिता का संदेश मिल चुका है, अब वापस अपने समाज में चलते हैं और वहाँ जाकर हम बतायेंगे कि ब्रह्माजी ने हमें क्या आदेश दिया है। तीनों अपने-अपने समाज में पहुँचे। देव वर्ग के प्रतिनिधि ने कहा कि हमलोग अपनी यात्रा तो पूरी नहीं कर पाये, लेकिन बादलों की गर्जना में हमने ब्रह्माजी के आदेश को सुना। अन्य देवताओं ने पूछा, कौन-सा आदेश था। प्रतिनिधि ने कहा, 'बादलों की गर्जना में मैंने *दमध्वम्, दमध्वम्, दमध्वम्*–इस शब्द को सुना।' दानवों के प्रतिनिधि से पूछा गया कि तुमने क्या आदेश पाया है तो उसने कहा कि बादलों की गर्जना में मैंने *दयध्वम्, दयध्वम्, दयध्वम्* शब्द को सुना। मनुष्यों के प्रतिनिधि से पूछा गया तो उसने कहा मैंने *दनध्वम्, दनध्वम्, दनध्वम्* शब्द को सुना। एक ने सुना *दमध्वम्,* दूसरे ने सुना *दयध्वम्* और तीसरे ने सुना *दनध्वम्*। केवल एक अक्षर का हेर-फेर हुआ है और कुछ नहीं।

देवताओं ने चिंतन किया कि *दमध्वम्* का मतलब होता है दमन करो अर्थात् उनके लिए यही आदेश है कि भोग-वृत्ति का दमन करो। देवता जहाँ रहते हैं वह किसी पाँच सितारा होटल से कम नहीं। वहाँ पर देवताओं में भोग की वृत्ति प्रबल होती है। हमारे समाज में भी जो धनी देवता लोग हैं उनके जीवन में भोग की वृत्ति प्रबल होती है। पुराने फोन से काम नहीं चलता, बिल्कुल नया मॉडल उनके पास होना है। भोग-वृत्ति पर विजय प्राप्त करना यही देवताओं के लिये आदेश था।

दानवों के लिये कहा गया–*दयध्वम्* जिसका अर्थ होता है दया करो। दूसरों को कष्ट पहुँचाना, दूसरों को दु:ख देना, दूसरों के सुख का हरण करना–यह दानवी और आसुरी वृत्ति है। उनके लिये परमपिता ने आदेश दिया कि किसी को दु:ख नहीं दो, बल्कि दया करो।

मनुष्यों के लिये कहा गया– *दनध्वम्, दनध्वम्, दनध्वम्,* जिसका मतलब होता है दान करो, दान करो, दान करो। दान किसका होगा? जो हमारे पास है, जिसका हमने संग्रह किया है उसी को हम दे सकते हैं। संग्रहकारी वृत्ति स्वार्थ की वृत्ति है और दान की प्रक्रिया परमार्थ की वृत्ति है। इसलिये मनुष्यों से कहा गया है कि स्वार्थ वृत्ति से ऊपर उठकर अपने जीवन में परमार्थ वृत्ति को धारण करो। बात हो रही थी अस्तेय की और अस्तेय को सिद्ध करने का मार्ग है दान। लेना कम और देना ज्यादा, इसको कहते हैं अस्तेय।

अपरिग्रह–चौथा यम है अपरिग्रह। जितनी तुम्हारी आवश्यकता है उतना ही उपयोग करो। कभी-कभी हम किसी घर में जाते हैं तो देखते हैं कि अलमारी में कई जोडे जूते भरे हैं। तब मन में प्रश्न उठता है कि एक आदमी दिन में कितनी बार अपना जूता बदलता होगा! हम पूछते भी हैं कि दिनभर में कितने जूते बदलते हैं तो कहते हैं कि स्वामीजी, मैंने सालभर से एक ही जूता पहना है। तब हम पूछते हैं कि फिर अलमारी में सैकड़ों जूते क्यों हैं, क्या आप बाटा की दुकान खोलना चाहते हैं? इसको कहते हैं परिग्रह, मतलब आपके पास आवश्यकता से अधिक है। इसके लिए सबसे पहले यह निश्चित करो कि आपकी आवश्यकता क्या है।

ब्रह्मचर्य–पाँचवा यम है ब्रह्मचर्य जिसका तात्पर्य एक सकारात्मक वृत्ति को अपनाने से है। ये पाँच यम हैं जिनसे मनुष्य अपनी नकारात्मक चित्तवृत्तियों को संतुलित एवं व्यवस्थित कर पाता है और उनके नकारात्मक प्रभावों से स्वयं को मुक्त कर लेता है।

नियम

इसके बाद पाँच नियम हैं–शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान। मजेदार बात यह कि इन नियमों को प्राय: सब लोग नजरअंदाज कर देते हैं और उच्च अभ्यासों के पीछे पड़ जाते हैं। पहला नियम है शौच जिसकी उत्पत्ति शुचि शब्द से हुई है। शुचि का मतलब होता है शुद्ध, पवित्र, निर्मल और स्वच्छ। बहुत बार जब लोग हमारे पास योग सीखने के लिए आते थे, तब हम एक शरारत करते थे। हम उन लोगों के कमरे में जाकर देखते थे कि वे अपना कमरा कैसा रखते हैं। जिस तरीके से आप अपना कमरा रखते हैं वह आपके मन की स्थिति को दर्शाता है। अगर आपका कमरा कचरे से भरा हुआ है, अस्त-व्यस्त है, स्वच्छ नहीं है तो इसका मतलब आपका मन भी कचरे से भरा है, स्वच्छ नहीं है, पवित्र नहीं है। लेकिन जो व्यक्ति अपने कमरे को साफ-सुथरा रखता है, उसके जीवन में शुचिता होती है और उसका मन भी शुद्ध हो सकता है। लोग इस छोटी-सी चीज को नहीं समझ पाते हैं और सोचते हैं कि सफाई से क्या मतलब, हमें तो ध्यान लगाना है। लेकिन जब तक मन साफ नहीं होता, ध्यान नहीं लगता। अगर आपके जीवन में

शुचिता है तभी शान्ति भी होगी, और जहाँ पर पवित्रता एवं स्वच्छता है वहाँ पर संतोष तो होगा ही। शौच और संतोष के बाद तीसरा नियम है तप।

तप का मतलब होता है तपस्या। लेकिन आपको तपस्या करने के लिये एक पैर पर खड़े होने की आवश्यकता नहीं है। जिस प्रकार सोने को शुद्ध करने के लिये उसे अग्नि में तपाते हैं, उसी प्रकार अपने भीतर के विकारों से मुक्त होने के लिये स्वयं को तपाना पड़ता है। यह तपाना होता है प्रत्याहार की अवस्था में, क्योंकि प्रत्याहार में हम अपने मन के सभी विकारों को बाहर निकालते हैं। जब विकार बाहर निकालते हैं तो उनका प्रभाव तो पड़ेगा ही। जब स्मृति बाहर आती है उसका असर तो होता ही है। लेकिन एक बार यह निकल जाए तो मन निर्मल हो जाता है।

एक सत्य घटना का उदाहरण देता हूँ। आश्रम के एक संन्यासी, डॉ. स्वामी शंकरदेवानन्द एक ऑस्ट्रेलियन चिकित्सक हैं जिन्हें बचपन से दमा की तकलीफ थी। उन्होंने चिकित्सा शास्त्र का अध्ययन इसलिए किया कि वे खुद को दमा से मुक्त कर सकें। लेकिन जो पद्धतियाँ उपलब्ध थीं, उनके द्वारा दमा का निदान नहीं हुआ। वे मुंगेर आश्रम में आए, हमारे गुरु जी से मिले और आश्रम में कुछ समय व्यतीत किया। उन्हें दमा के जबरदस्त दौरे पड़ते थे। गुरुजन तो किसी भी चीज के मूल कारण को जान लेते हैं। हमारे गुरु जी ने इस चिकित्सक को आसन-प्राणायाम करने को नहीं कहा, बल्कि यह कहा कि तुम रोज पन्द्रह मिनट बैठकर ध्यान करो और ध्यान में अतीत की स्मृतियों को बाहर निकालने का प्रयास करो।

एक दिन जब चिकित्सक ध्यान कर रहे थे तब एक स्मृति उनके मानस-पटल पर आती है। वे अपने आपको पाँच साल के बालक के रूप में देखते हैं। उनके माता-पिता काम करने चले गये थे, घर में नौकरानी थी जो उनको भोजन करा रही थी। लेकिन जो भोजन वह खिला रही थी, उसे ये खाना नहीं चाहते थे। नौकरानी ने धमकी दी, अगर तुम नहीं खाओगे तो मैं तुम्हारे पिताजी को बोलूँगी, तुमको मारूँगी। ऐसा कहकर जबरदस्ती उन्हें खाना खिला दिया। चिकित्सक ने उस घटना को मात्र अपने ध्यान में देखा और उसके बाद उनका दमा गायब हो गया।

ऐसा ही एक और उदाहरण है स्वामी निश्चलानन्द का, जिन्होंने यौगिक साहित्य के लेखन में बहुत योगदान दिया है। वे बहुत विद्वान् थे, लेकिन उन्हें क्लॉस्ट्रोफोबिया की समस्या थी, यानि छोटी, तंग जगहों में उन्हें घुटन होती थी, डर लगता था। गुरु जी ने उन्हें भी रोज पन्द्रह मिनट ध्यान करने और अतीत की स्मृतियों को बाहर निकालने को कहा। एक बार उन्होंने ध्यान के समय एक दृश्य देखा जिसमें वे अपने पिता के साथ मछली पकड़ने के लिये नदी के किनारे पहुँचे। जब उन्होंने काँटे में लगाने के लिये कीड़ों के डिब्बे को खोला तो वे सभी कीड़े उड़ने लगे और उड़कर उनके चेहरे पर आ गए। इस दृश्य को देखने के बाद से ही उनकी क्लॉस्ट्रोफोबिया की समस्या समाप्त हो गई!

दोनों व्यक्तियों ने एक ऐसी परिस्थिति का अनुभव किया था जिसे वे बौद्धिक स्तर पर नहीं समझ पाए थे। एक बालक जब डिब्बे को खोलता है और उन जन्तुओं को अपनी ओर उड़ते देखता है तो घबराता है और उसे क्लॉस्ट्रोफोबिया हो जाता है। दूसरा व्यक्ति भावनात्मक कुंठा के कारण दमा से ग्रस्त हो जाता है। जब उसने इस बात को पहचान लिया तो दमा समाप्त। इसको कहते हैं तपस्या। तप का मतलब अपना शुद्धिकरण करना, अपने आप को जलाना। जलाने की प्रक्रिया में पूर्व की अनुभूतियों को बाहर निकालना पड़ता है ताकि उनसे जीवन में जो संकीर्णता आई है, मन में जो अवरोध आया है, वह समाप्त हो जाए।

तप के बाद चौथा नियम है स्वाध्याय, अर्थात् स्वयं का अध्ययन, आत्म-परीक्षण, आत्म-निरीक्षण, आत्म-विश्लेषण। इसके बाद पाँचवा नियम है ईश्वर प्रणिधान, मतलब परम तत्त्व में श्रद्धा।

राजयोग का क्रम

महर्षि पतंजलि ने अपने योगसूत्रों में जिन पाँच यमों तथा पाँच नियमों की चर्चा की है, उनका उद्देश्य है वृत्तिनिरोध। यम-नियम के बाद आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का क्रम प्रारंभ होता है। इनका उद्देश्य वृत्तियों का निरोध नहीं बल्कि अपनी इन्द्रियों को समेटना, एकाग्रता को प्राप्त करना और तन्मयता की प्राप्ति है। इन्द्रियों को भौतिक जगत् से समेटना प्रत्याहार है, एकाग्रता की प्राप्ति धारणा है, और जिस प्रतीक, स्वरूप, विधि या मंत्र पर आपने अपने मन को एकाग्र किया है उसमें तन्मय हो जाना ध्यान की अवस्था है। तन्मयता को ही ध्यान कहते हैं। जब आपका मन किसी वस्तु में रम जाए तो वह ध्यान है। स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे, जब प्रेमी-प्रेमिका आपस में बातें करतें हैं तो घंटों बीत जाते हैं, उन्हें समय का आभास नहीं होता। वह ध्यान की एक अवस्था है। लेकिन अगर किसी व्यक्ति से कह दिया जाए कि तुम दस सेकेण्ड तक गरम तवे पर बैठ जाओ, हम तुम्हें एक लाख रुपये देंगे, वह व्यक्ति दस सेकेण्ड क्या, आधा सेकेण्ड भी तवे पर बैठ नहीं पायेगा, क्योंकि वहाँ तन्मयता संभव नहीं है। जब तन्मयता आती है तब ध्यान की अवस्था स्वत: प्राप्त हो जाती है।

एक बार सम्राट् अकबर शिकार करने के लिये जंगल में गये थे। नमाज़ अदा करने का वक्त हुआ तो उन्होंने अपनी चादर बिछाई और नमाज़ शुरू की। तभी एक आदिवासी युवती अपनी मस्ती में आई और उनकी चादर पर कदम रखते हुए आगे बढ़ गई। सम्राट् अकबर आग-बबूला हो गये। किसी तरह उन्होंने अपनी नमाज़ खत्म की और उसके बाद सैनिकों को आदेश दिया कि उस युवती को पकड़कर मेरे सामने लाओ। जब सैनिक उस युवती को पकड़कर लाते हैं तो अकबर उससे पूछते हैं, 'क्या तुम अंधी हो? क्या तुमने नहीं देखा कि मैं अपने आराध्य की आराधना कर रहा था?' वह युवती कहती है, 'महाराज, आप अपने प्रभु की आराधना कर रहे थे और मैं अपने प्रेमी का चिंतन करते हुए उससे मिलने के लिये जा रही थी। उस समय मुझे आभास भी नहीं था कि मैं कहाँ चल रही हूँ, कहाँ पर मेरे कदम पड़ रहे हैं, मैं क्या कर रही हूँ। आप भी तो अपने प्रेमी से मिल रहे थे, लेकिन आप सब कुछ देख रहे थे।' बतलाइये, सम्राट् अकबर की प्रार्थना में और उस युवती के प्रेम में कौन ज्यादा तन्मय था?

जहाँ पर तन्मयता आती है वहाँ पर ध्यान स्वत: सिद्ध होता है, और जहाँ तन्मयता नहीं वहाँ पर ध्यान मात्र एक मशीनी कार्य है कि पाँच मिनट के लिये बैठ जाओ, आँखें बन्द कर लो, उसके बाद एकाध झपकी ले लो, फिर आँखें खोलकर कहो कि बहुत अच्छा ध्यान लगा है। यहाँ तन्यमता नहीं है, इसलिए यह ध्यान भी नहीं है। यह मन की एक भ्राँति है। ध्यान में ऐसी तन्मयता होती है कि मनुष्य समय, स्थान और वस्तु को भूलकर अपने आप में ही मस्त रहता है।

हम चित्तवृत्तियों के विषय में बात कर रहे थे और योग में जब हम इन चित्तवृत्तियों के निरोध के पश्चात् एक नयी वृत्ति को जन्म देते हैं, तब हमारी शक्ति का उत्थान होता है। लेकिन इन चित्तवृत्तियों के निरोध के लिये यम तथा नियम की सहायता लेना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि इनके बिना वृत्तियों का निरोध संभव नहीं है। आसन, प्राणायाम, ध्यान, मंत्र-जप या पूजा-पाठ से चंचल-वृत्तियों का निरोध नहीं होता। यम-नियम का पालन करो और चित्तवृत्तियों के तोड़ को खोज लो। तब मन तुरन्त शान्त हो जायेगा।

हमारे गुरुजी कहते थे कि जीवन में कभी कोई परेशानी नहीं होती, क्योंकि हर परिस्थिति का एक तोड़ होता है। तुम परेशानी इसलिए झेलते हो कि तुम उस परिस्थिति के तोड़ को नहीं खोज पाते हो। लेकिन इस बात को याद रखना कि हर परिस्थिति का एक निदान अवश्य होता है, एक तोड़ जरूर होता है और जब हम उसको जान लेते हैं, तब हमारा जीवन सुलभ और सरल हो जाता है। यम-नियम ऐसे निदान हैं जिनका प्रयोग योग में चित्तवृत्तियों के निरोध और उसके पश्चात् ऊर्जा के उत्थान के लिये किया जाता है।

–19 सितम्बर 2014, त्यागराज स्पोर्ट्स स्टेडियम, दिल्ली

शिवानन्द दिग्विजय

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, अपने महान् गुरु, स्वामी शिवानन्द जी की सन् 1950 की चिरस्मरणीय अखिल भारतीय दिग्विजय यात्रा के प्रत्यक्ष साक्षी और अभिन्न सहभागी रहे। उनके द्वारा लिखित पुस्तक 'शिवानन्द दिग्विजय' से इस अद्भुत यात्रा के दिल्ली चरण की कुछ प्रेरणास्पद झांकियाँ यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं।

6 नवम्बर। 8 बज चुके थे। राजघाट की दिग्विश्रुता भूमि दिव्य हलचल से जाग उठी। सत्य, अहिंसा के पुजारी की आत्मा के सन्निधान में आरण्यक-शान्ति के संस्थापक ने राम-ध्वनि जगाई, जो उसके निरंजन ज्ञान का प्रशान्त राग था और जिसकी एकमात्र सत्ता को प्रतिष्ठापित मान कर, उसने जनजागरण का श्री-गणेश किया। धूप, दीप, नैवेद्य और आराधना से राजघाट सुरभित हो उठा। पुष्पों की नयन-रंजक राशियाँ युगनिर्माता गाँधी जी के हृदयधन 'रामनाम' का आलिंगन करने लगीं। उसी समाधि के सन्निधान में सहस्रों व्यक्ति श्री स्वामी जी के साथ समाहित-मनसा कुछ क्षणों तक पारमात्मिक आनन्द लूटते रहे, ध्याननिष्ठ रहे और भक्तिनिष्ठ भी!

दिन के 1 बजते ही भारत के सेनापति, जनरल के.एम. करियप्पा और स्वामी जी का सम्मिलन हुआ। उस दिन के भोजन में स्वामी जी तथा माननीय सेनापति के अतिरिक्त मेजर-जनरल ए.एन. शर्मा की पत्नी और पुत्री ने भी योग दिया। पौने तीन बजे तक परस्पर सम्भाषण होता रहा। कीर्तन हुए और भजन भी, तथा हुई उपदेशों की जीवन-पावनी वर्षा।

माननीय सेनापति के निवास स्थान से स्वामी जी ने 'ऑल इण्डिया रेडियो, दिल्ली' के प्रतिष्ठान में प्रवेश किया और प्रसारण केन्द्र में गए, जहाँ से राज्याधिनिर्माता समय-समय पर राष्ट्र को अपनी वाणी सुनाते और विश्व की नीतियों को प्रभावित करते रहते हैं।

रेडियो प्रतिष्ठान का वह सौभाग्य था, क्योंकि विश्व की कुटिल नीति को परिवर्त्तित करने के लिए एक युगावतार उसकी सीमाओं में प्रविष्ट हुआ। प्रतिष्ठान के अधिकारियों ने सादर और सभक्ति युगविभूति की वाणी को आकाश की विशालता में प्रसारित करते हुए, राष्ट्रव्यापी किया।

धर्म की सार्वभौमिकता पर स्वामी जी ने आकाशवाणी की—'यह निश्चयत: ईश्वर से आवृत्त है। ईश्वर के अतिरिक्त और जो कुछ है, वह माया है। मनुष्य सत्य को भूल असत्य को ग्रहण करता है, अत: दु:खी जीवन को प्राप्त होता है। सत्य पदार्थ की ओर अपनी भावनाओं को उन्मुख करने से मनुष्य परम-शान्ति का अनुभव करता है; जिस शान्ति का विद्युत्-गृह प्रत्येक प्राणी के हृदय में ही है,

बाहर नहीं। धर्म ईश्वर को कहते हैं; ईश्वर के नाम, पवित्र आचरण और पवित्र वचनों को कहते हैं। धर्म मनुष्य को पृथक् नहीं, किन्तु उसकी सभी विभिन्नताओं को एकता के सूत्र में ग्रथित करता है। धर्म ही मनुष्य की एकता के जीवन का समाधान है। यदि धर्म की ग्लानि हुई तो मनुष्यत्व की ग्लानि समझनी चाहिए और यदि धर्म का संस्थापन हुआ तो जनकल्याण ओर आत्म-क्षेम निश्चित जानो। धर्म ही विश्व का आधार है और ब्रह्माण्डों का परिपोषक भी। मोक्ष का अभिवचन तो धर्म है ही...' 'ऑल इण्डिया रेडियो' के दिल्ली-स्टेशन से यह आकाशवाणी प्रसारित की गई...!

सायंकाल के समय 'दिल्ली विश्वविद्यालय' में स्वामी जी के कई प्रवचन हुए। विश्वविद्यालय की ओर से माननीय पीठ-स्थविर ने स्वामी जी का स्वागत किया और विद्यार्थियों के मध्य महाराज का ओजस्वी परिचय दिया।

स्वागत का सुन्दर उत्तर देते हुए स्वामी जी ने विद्यार्थियों को अपना सन्देश दिया, धर्म की नींव को सुधारने और आत्म-सुधार के लिए प्रोत्साहित किया। वेदों और शास्त्रों, पुराणों और इतिहासों के पिछले पन्नों की पुनरावृत्ति करते हुए स्वामी जी ने कहा, 'प्रत्येक विद्यार्थी को अपने चरित्र का निर्माण करना होगा। तभी वह अपने को राष्ट्र और विश्व की सेवा का योग्य अधिकारी बना सकता है। सर्वप्रथम आत्म-सुधार की आवश्यकता है। द्वितीय, जनकल्याण की महद् अभिलाषा होनी चाहिए और सेवा के लिए उत्कट इच्छा भी...!'

तत्पश्चात् विश्वविद्यालय के 'परिषद् भवन' में विश्वविद्यालय के छात्रों की बैठक को अपना सन्देश देते हुए स्वामी जी ने सदाचार और सद्विचार पर जोर दिया, भगवद्-विचार और भगवद्भक्ति की आवश्यकता को सिद्ध किया। आपने कहा, 'प्रत्येक विद्यार्थी को योगमय जीवन व्यतीत करना चाहिए। तभी वह अपने में देशसेवा की योग्यता को परिपक्व हुआ पावेगा। यदि वह योगसिद्ध और व्यवहारकुशल न हुआ, सदाचारी तथा सद्विचारी न हुआ तो वह जनकल्याण और देशसेवा के योग्य नहीं हो सकेगा, वह सदा असफल ही रहेगा। धर्मस्थापन के लिए आवश्यकता है योगनिष्ठ व्यक्तियों की, नवयुवकों की, जो संसार के भोग-विलास को त्यागने की क्षमता रखते हैं... !'

विद्यार्थियों ने शान्तिपूर्वक दत्तचित्त होकर उनके सन्देश को सुना और उसे हृदयंगत कर लिया। जब स्वामी जी दिल्ली स्थित 'लोदी संस्थान' में विशाल जनसमारोह को दर्शन देने प्रविष्ट हुए तो उन्होंने भी महाराज का अनुसरण किया।

6 बजते ही महाराज ने 'लोदी संस्थान' में जनता को दर्शन दिए और उपदेश भी। तदुपरान्त अनेकानेक भक्तों के घरों को तीर्थरूप करते हुए स्वामी जी ने 'बिरला मन्दिर' में संप्रति पदार्पण किया। सहस्त्रों नर-नारी उनके दर्शनों की अभिलाषा में दो घण्टों से प्रतीक्षा कर रहे थे।

'बिरला मन्दिर' के सामने पूर्वोक्त प्रशस्त पण्डाल में पुन: भक्त-जनसमागम प्रारम्भ हुआ। 'लाहौर हरिकीर्त्तन सभा' की ओर से स्वामी जी को मानपत्र अर्पित किया गया। अनन्तर स्वामी जी का व्याख्यान हुआ। व्याख्यान ओजस्वी था, निर्जीव में भी जीवन-संचार करने वाला। सागर की विशालता को नापने वाले, तथा तृण को भी महान् कर देने वाले सर्वशक्तिमान् के समान उनकी योगोज्ज्वला कान्ति का प्रकाश सर्वत्र आनन्द-ही-आनन्द का संचार करता था, शान्ति-ही-शान्ति लाता था। उनके वचनों में सत्यता थी, जिसके प्रकाश में मनुष्य ने अपना पथ खोजना सीखा। उनके भावों में सद्प्रेरणा थी, जिसके आधार पर जनकल्याण का दिव्यतम प्रासाद अभिनिर्मित हुआ और उस विश्वात्मक धर्मचक्र की संस्थापना हुई, जिसको युगानुजीवी करने के लिए समय-समय पर अवतारों का अवतरण, धर्मप्रचारकों का अभ्युदय और युगविभूतियों का समावेश हुआ करता है।

7 नवम्बर। प्रात:काल बिरला मन्दिर-स्थित 'गीता भवन' में सत्संग हुआ। स्वामी जी ने उपस्थित जनता को उपदेश दिये और श्रुतिमधुर भगवन्नाम गाये। सत्संग के उपरान्त आपने 'करौल बाग' में शरणार्थी विद्यार्थियों को 'सालवान् विद्यालय' में दर्शन और उपदेश दिये। विद्यालय की ओर से राष्ट्रीय सम्मान प्राप्त करते हुए आपने शिक्षा-दीक्षा की प्रशंसा की। जिस अध्यात्म भाव से बालकों की शिक्षा का प्रतिष्ठापन किया हुआ था, वह प्रणाली किसी भी विद्यालय के लिए स्पर्धा का पात्र हो सकती थी।

विद्यालय में विद्यार्थियों को उपदेश देने के उपरान्त 'बिरला मन्दिर ट्रस्ट' के मंत्री श्री नारायणदास जी ने स्वामी जी को अपने निवास-स्थान में निमन्त्रित किया। कीर्त्तन और भजन के उपरान्त श्री स्वामी जी डॉ. सराफ की निवास-भूमि को पवित्र करते हुए राजखाद्यविभाग के उप-सचिव श्री एम. तिरुमल राव के आवास-गृह की ओर आकृष्ट हुए।

श्री तिरुमल राव ने आध्यात्मिक-सम्राट् के श्री-चरणों में नतमस्तक होने का स्वर्ण-अवसर प्राप्त किया, जो सर्वथा देवदुर्लभ है। उनके भाग्य का परमोदय हुआ था, तभी तो स्वामी जी ने यथासमय उनके निवास-गृह में स्वत: जा कर उनको मन्त्र-पुनीत किया। अन्यथा स्वामी जी वहाँ न जाकर अन्यत्र चले गए होते। किन्तु ऐसा न हुआ। श्री तिरुमल राव जी की अनन्य भक्ति अन्य किसे प्राप्त थी? उनकी अकैतव और अव्यभिचारिणी भक्ति के सामने नगर के अन्यान्य धनपतियों और

कर्मचारियों की गणना ही क्या थी! भगवान राम शबरी के यहाँ क्यों गये थे? और भगवान श्रीकृष्ण विदुर के अतिरिक्त और कहीं क्यों नहीं गये? भगवान को अपनी ओर खींचने के लिए तो अनन्यभक्ति और परात्परीय प्रेम चाहिये। तब फिर क्या साधारण गृहस्थ और क्या राजमणि-मुकुटरंजित सम्राट्, क्या लक्ष्मीसेवित धनपति और क्या राह का भिखारी—सभी भगवान के दरबार में समान स्थान पाते हैं। भला श्री तिरुमल राव के सौभाग्य का क्या कहना? वह तो अनेकों जन्मों के सुसंस्कारों का समुदय था।

सायंकाल के 5 बजे वाय.एम.सी.ए. के तत्त्वावधान में विशाल भवन जनकलरव-संयोजित था, जहाँ युगावतार की आध्यात्मिक गीतायें जाग रही थीं—स्वामी जी का व्याख्यान हो रहा था। विषय था 'योग साधना'। अमेरिकन दूतावास से भी अतिथिगण पधारे थे। जनता की ओर से श्री तिरुमल राव जी ने स्वामी जी का स्वागत किया।

अपने प्रवचन में स्वामी जी ने कहा, 'मनुष्य के राक्षसी विचारों को दबाने के लिये योगसाधना ही एकमात्र उपाय है। आज हम अपने जीवन में जो कुछ आतंक प्रविष्ट हुआ पाते हैं, वह केवल हमारे राक्षसी विचारों की माया है। यदि हम योगसाधना के द्वारा आज ही इन राक्षसी विचारों को लुप्त कर दें तो हमारे जीवन से आतंक का तिरोधान हो जायेगा, साथ-साथ हम अपने जीवन को अमित-आनन्द से आपूरित हुआ पायेंगे...'

सान्ध्य गगन अरुणिम होता जा रहा था। जब कि दिल्ली निवासी, राज्यवर्ग और धनपति रेलवे स्टेशन की ओर संवर्त्तक पवन की नाईं बहे चले जा रहे थे। गगनगामिनी पिपीलिकाओं के समान था उनका ज्वार, जिसमें केवलमात्र एक ही विभूति की मनोहर रूपरेखा नृत्य कर रही थी; एक ही युगावतार के निस्तुलेय सौन्दर्यान्वित व्यक्तित्व की अलौकिकता विराज रही थी।

रात्रि के 10 बजने वाले थे। नगरनिवासी दिग्विजयी के दर्शनों को आए। विशाल भारत के प्रतिनिधि, जनता के छत्र-शिरोमणि, दिल्ली के निवासीगण दिग्विजयी को शिवगिरि के अंचल की ओर जाते हुये देखने आए थे। न जाने उनके जीवन में पुन: कभी वे दिन भी आयेंगे या नहीं, जब वे तपस्वी की महामहिमाशाली छटा के दर्शन भी कर सकेंगे?

दिग्विजय की पूर्णिमा का उदय होने वाला था। समस्त गगनमण्डल निष्कलंक हो गया। भगवान शशांकशेखर की सदाचार-राशि से पथ उज्ज्वल हो चुका था। दिल्ली में ही हमने चतुर्दशी के आलोक से ज्योत्सना को सजधज कर आते देखा; जबकि हमारे तपोज्ज्वल महर्षि शिवगिरि के अंचलों की ओर, हिमालय की घाटी को प्रणाम करते हुए जा रहे थे... दिग्विजयिनी की सुखद गोद में विश्राम पाते हुये।

मंत्रों का सार्वभौमिक प्रभाव

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

महामृत्युंजय मंत्र का पाठ करने का निर्देश हमारे गुरुजी ने उस समय दिया जब परमगुरु स्वामी शिवानन्द जी की जन्म शताब्दी मनाई जा रही थी। तब से एक आश्रम परम्परा के रूप में प्रत्येक शनिवार को हमलोग इस पावन मंत्र का पाठ करते हैं। केवल आश्रम में ही नहीं, बल्कि विश्व के कोने-कोने से लोग अपनी समस्या के निदान के लिये हमलोगों को पत्र लिखते हैं और जब पाठ होता है तब लोगों का नाम लेकर उनकी समस्या को दूर करने के लिये प्रार्थना करके फिर हमलोग मंत्र जप करते हैं। अभी तक जो प्रभाव और परिणाम हमलोगों ने देखा है, वह बहुत ही सकारात्मक रहा है। लोगों को बीमारी में सहायता मिली है, प्रमोशन अटका हुआ था तो प्रमोशन हो गया है। विचित्र-विचित्र परिस्थितियों में लोगों के जीवन की बाधाएँ दूर हुई हैं और उन्होंने अपने जीवन में शान्ति और समृद्धि को प्राप्त किया है।

इस पाठ के साथ हमारे गुरुजी का संकल्प जुड़ा हुआ है। उनका संकल्प यही था कि सबके जीवन में सुख, शान्ति और समृद्धि आए, क्योंकि यह हर प्राणी की आवश्यकता है। संसार में हाथ-पैर मारकर तो हमलोग थक चुके हैं। संसार में हम चाहे जितना भी परिश्रम करें, बाधाओं और परेशानियों का ही सामना अधिक होता

है जबकि उपलब्धि कम होती है। लेकिन जब परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि अब आप ही हमारे जीवन की शक्ति बनो, तब वास्तव में हमें ऊर्जा और प्रेरणा प्राप्त होती है। श्रद्धा, विश्वास और आस्था के बल पर हमारे मार्ग में फिर कोई भी बाधा नहीं आती। अगर बाधा है तो वह भी हमारी सहायता ही करती है, एक नये चिंतन की ओर मार्ग प्रशस्त करती है।

इस सम्बन्ध में एक बात और है। अगर आज हम अपने समाज और घर-परिवार को देखते हैं, तो अव्यवस्था, असंतुलन, अराजकता तथा अशान्ति ही दिखलाई देती हैं। घर-परिवार में माता, पिता और बच्चों के बीच दूरी बढ़ रही है। वे हमारे संतान हैं, हम उनके अभिभावक हैं, लेकिन हमारा उनसे कोई नाता-रिश्ता नहीं रहता। हमने केवल जन्म दिया है, इसके आगे कुछ नहीं।

आपको एक सत्य घटना बतलाता हूँ। हमारे आश्रम से जुड़ा एक व्यक्ति था, समय आने पर उसका विवाह हो गया। वह नौकरी करता था जिसके लिए सबेरे जाता था और रात को लौटता था। संतान पैदा हुए, जन्म के समय अपने बेटा-बेटी को देखा, लेकिन फिर अपने कार्य में व्यस्त हो गया। बच्चे बड़े हुए, स्कूल जाने लगे, दस-बारह साल बीत गये। एक दिन वही पिता अपने संतानों को देखकर कहता है, अरे! तुम लोग इतने बड़े हो गये हो! पत्नी कहती है, 'आप इन्हें देखते ही कब हैं? सबेरे जब आप काम के लिये निकलते हैं तो बच्चे अपने स्कूल की तैयारी में रहते हैं, आप नाश्ता करके निकल जाते हो, उनसे मिलना तो होता नहीं है। जब आप रात को लौटते हो, आपके बच्चे सो चुके होते हैं। आप उनसे शायद ही कभी मिलते हो। क्या आपको मालूम है कितने वर्षों से आपने अपने संतान को ठीक से नहीं देखा है?' वह व्यक्ति आश्चर्यचकित हो गया, कहा, बात तो सच है। मेरा अगर इनसे मिलना होता भी है तो क्षणमात्र के लिये होता है। हम इधर आ रहे हैं, वे उधर जा रहे हैं। चलते-फिरते मिलना होता है, लेकिन बैठकर हमने आज तक अपने बच्चों के साथ शायद एक दिन, एक घंटा भी नहीं बिताया है। यह सत्य घटना है, और हो सकता है कि आपके जीवन में भी ऐसी परिस्थिति आई होगी। अगर नहीं आई है तो याद रखना कि अवश्य आ सकती है।

यह संकेत देता है मनुष्य जीवन में एकाकीपन का। जीवन में कोई भावनात्मक सम्बन्ध नहीं है, कोई आदर्श की शिक्षा नहीं है, कोई सलाह या सहायता नहीं है। परिवार में हर व्यक्ति अपना अलग जीवन व्यतीत करता है। आज आपके घर में क्या सब कोई एक साथ बैठकर खाना खाते हैं? नहीं, बच्चों का समय अलग है, बड़ों का समय अलग है। खाने का समय अलग है, उठने का समय अलग है, सोने का समय अलग है, सब अलग-अलग जीवन व्यतीत करते हैं। और आप चाहते हैं कि पारिवारिक जीवन संगठित हो। आप चाहते हैं कि आपके बेटा-बेटी आपको सम्मान प्रदान करें, आपकी बात मानें, लेकिन जब आपसे कोई सम्बन्ध ही नहीं

है, सम्पर्क ही नहीं, कोई बातचीत ही नहीं है, कोई शिक्षा ही नहीं है, तो क्या इस सम्बन्ध में कभी दृढ़ता आ पायेगी? दोष किसका है? उत्तर आप ही दीजिये, मुझे देने की आवश्यकता नहीं।

हमारे गुरुजी कहा करते थे कि सप्ताह में एक दिन तुम लोग एक घंटा पूरे परिवार को साथ लेकर बैठो। टी.वी. मत देखो, पार्टी मत करो, बल्कि अपने आपको अपने परिजनों से मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक रूप से जोड़ने का प्रयास करो। एक साथ बैठने का एक समय निश्चित कर लो और उस दिन कोई बहाना नहीं। वह घर का एक अनुशासन होना चाहिये। साथ बैठकर कम-से-कम महामृत्युंजय मंत्र की एक माला का जप करो। उससे सकारात्मक ऊर्जा की वृद्धि होगी, घर का वातावरण परिवर्तित होगा और एक संतुलित भावनात्मक सम्बन्ध की स्थापना होगी। परिवारवाले एक-दूसरे को समझने लगेंगे।

आप सोचते होगे कि साधु-संन्यासी ऐसी बात इसलिए करते हैं कि वे लोगों को मंत्र देकर अपना चेला बनाना चाहते हैं। लेकिन मैं इसका एक व्यवहारिक उदाहरण देता हूँ। विश्व में पाँच सौ वैज्ञानिकों का एक समूह है जिन्होंने अमेरिका की अंतरिक्ष एजेन्सी, नासा से एक प्रोजेक्ट लिया है। इस प्रोजेक्ट पर काम हो रहा है स्पेन के मैड्रिड विश्वविद्यालय में। मुझे इस प्रोजेक्ट के बारे में मालूम है, क्योंकि मैं भी उनमें से एक व्यक्ति हूँ जो इस प्रोजेक्ट पर काम कर रहे हैं। वैज्ञानिक के रूप में नहीं, योगी के रूप में। जो काम हमलोग कर रहे हैं वह एक ऐसे यंत्र का आविष्कार है जिसमें फ्रिक्वेंसी का आदान-प्रदान होगा।

इस अनुसंधान की पृष्ठभूमि बतलाता हूँ। अंतरिक्ष यात्री जब ऊपर जाते हैं, तो सप्ताह-दस दिन के लिए जाना और आना कोई बड़ी बात नहीं है, लेकिन अगर स्पेस-स्टेशन में आपको छः महीने रहना है, सालभर रहना है या लम्बे समय के लिये अंतरिक्ष में यात्रा करनी है, और वहाँ आप बीमार पड़ते हैं तो उसका क्या निदान हो सकता है? जैसे हमलोगों ने अभी अपना एक यान भेजा है न मंगल ग्रह की ओर। बाद में लोग भी जायेंगे, हो सकता है कि कॉलोनी भी बने। जब अंतरिक्ष यात्री अंतरिक्ष में उड़ान भरते हैं तो स्पेस स्टेशन में वे हर संभावित दवाई को लेकर तो नहीं जाते। भविष्य में मुझे मधुमेह की संभावना है, इसलिये मधुमेह की गोलियाँ और इन्सूलीन का इंजेक्शन रख लो, दमा की संभावना है तो इन्हेलर रख लो, इस प्रकार सोचकर हम अंतरिक्ष में दवाई की दुकान तो नहीं खोल सकते। लेकिन व्यक्ति वहाँ पर बीमार पड़े तो क्या किया जाए?

अभी तो हम धरती पर बैठकर अंतरिक्ष यात्रियों के फिज़िकल पारामीटर को मॉनीटर करते रहते हैं कि इसका हृदय कैसा है, इसके फेफड़े कैसे हैं, सब ठीक-ठाक तो है न। अगर वे बीमार पड़ते हैं तो फिर अगली शटल से हम दवाई वगैरह भेजते हैं। लेकिन अब एक ऐसा यंत्र तैयार हो रहा है जो यहाँ से केवल इलेक्ट्रो-

मैग्नेटिक फ्रिक्वेंसी भेजेगा। नासा में देखा गया कि हर व्यक्ति का, उसके शरीर के हर अंग की एक एक इलेक्ट्रो-मैग्नेटिक फील्ड होती है और उस फील्ड की एक फ्रिक्वेंसी होती है। अगर अंतरिक्ष यात्री को मधुमेह है तो केवल उस अंग के लिये जो फ्रिक्वेंसी है वह जायेगी और मधुमेह ठीक करेगी। दमा है तो उसी की फ्रिक्वेंसी का प्रसारण होगा, दमा ठीक होगा। सिरदर्द है तो उसी की फ्रिक्वेंसी के ट्रांसमिशन से सिरदर्द ठीक होगा, बिना किसी गोली, दवाई या इन्जेक्शन के।

इस मशीन का नाम है क्वान्टम मशीन। भारतवर्ष में पहला मशीन हमारे आश्रम में है, उपचार के लिए नहीं, अनुसंधान के लिए। जब कोई आसन करता है तो आसन करने से शरीर में किस प्रकार का इलेक्ट्रो-मैग्नेटिक फील्ड उत्पन्न होता है, उसकी फ्रिक्वेंसी क्या है उसका आकलन किया जाता है। प्राणायाम करते हैं तो उसके आँकड़ों को यंत्र में फीड किया जाता है। इसी प्रकार से एलोपैथिक, आयुर्वेदिक और होमियोपैथिक दवाइयों की फ्रिक्वेंसी को देखा गया है और उनको यंत्र में फीड किया गया है। अब तक कुछ प्रयोग जो हुए हैं, उनसे निश्चित हुआ है कि फ्रिक्वेंसी के ट्रांसमिशन से हम दूसरों के रोग को ठीक कर सकते हैं।

दो साल पहले मैड्रिड में इन्हीं वैज्ञानिकों की एक गोष्ठी थी और हमें बुलाया गया था। अपनी साधना के कारण हम नहीं जा पाए, लेकिन टेलिकॉन्फ्रेन्सींग के माध्यम से हमने उस आयोजन में भाग लिया। वहाँ पर हमलोगों के जो योग प्रतिनिधि थे, उनसे हमने कहा कि इस आयोजन में तुम लोग एक दिन महामृत्युंजय मंत्र का पाठ उसी तरह करो जैसे हमलोग आश्रम में करते हैं, और पाँच सौ क्वान्टम

मशीन उसकी फ्रिक्वेंसी को मॉनिटर करेंगे। बड़े-से हॉल में वैज्ञानिक चारों तरफ बैठे थे अपने यंत्र लेकर और करीब एक हजार लोग हॉल के बीच में बैठकर इस मंत्र का पाठ कर रहे थे। यंत्रों में जब महामृत्युंजय मंत्र की फ्रिक्वेंसी को देखा जा रहा था, तो वैज्ञानिकों की आँखें आश्चर्य से खुल गईं। उन्होंने कहा कि आज तक इतना बड़ा फील्ड इस फ्रिक्वेंसी का हमने नहीं देखा है। हमने टेलिकॉन्फ्रेन्सींग के द्वारा उनसे पूछा कि जिस फील्ड को आप अपने यंत्रों से मॉनिटर कर रहे हैं, वह आखिर कितना बड़ा है? उन्होंने जवाब दिया, 'महामृत्युंजय मंत्र का प्रभाव हम कुछ यूँ देख रहे हैं मानो पूरे मैड्रिड शहर के ऊपर एक बड़ा-सा छाता खोल दिया गया हो।' बाद में उन्होंने हमें इस प्रयोग के चित्र भेजे और वे ऐसे दिखलाई दिये जैसे स्पेस कॉलोनी के फोटो दिखते हैं। एक बड़े-से बबल के भीतर मकान बने रहते हैं न? वह बबल उस क्षेत्र के लिये एक वातावरण तैयार करता है जहाँ पर मनुष्य जी सकता है। वैसा ही बबल पूरे मैड्रिड शहर के ऊपर इस मंत्र पाठ के दौरान देखा गया।

इस प्रकार अब वैज्ञानिक पद्धति से भी यह सिद्ध हो गया है कि मन की तरंगें अगर सही रूप में उपयोग में लाई जाएँ तो ये हमारे जीवन को सुरक्षित करती हैं, हमारे परिवार, समाज, नगर, राष्ट्र और यहाँ तक कि सम्पूर्ण विश्व को सुरक्षित करती हैं। इसी सिद्धान्त को, इसी विचारधारा को हमारे ऋषि-मुनि बताया करते थे, लेकिन हम उसे एक आध्यात्मिक चर्चा या दर्शन के रूप में देखते थे और उसकी व्यावहारिकता से स्वयं को परिचित नहीं होने देते थे।

हमारे यहाँ हमेशा से कहा जाता रहा है कि मंत्र के द्वारा एक ऐसी ऊर्जा उत्पन्न होती है, जो मनुष्य के जीवन के विकारों और विकृतियों को दूर करने में सक्षम है, क्योंकि मंत्र का असर पड़ता है मनुष्य के सूक्ष्म व्यक्तित्व पर। मनुष्य का स्थूल व्यक्तित्व शरीर और इन्द्रियाँ हैं, जबकि सूक्ष्म व्यक्तित्व मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार है। मंत्र की परिभाषा है– *मननात् त्रायते इति मंत्र:*। चिन्ता के बंधन से जो आपको मुक्त कर दे, नकारात्मक विचारों से जो आपको ऊपर उठा दे, उसे कहते हैं मंत्र, और यही मंत्र का सूक्ष्म और अतीन्द्रिय प्रभाव होता है।

–20 सितम्बर 2014, त्यागराज स्पोर्ट्स स्टेडियम, दिल्ली

महामृत्युंजय मंत्र की साधना से असाध्य रोगों, दुर्घटनाओं एवं संकटों से आपकी रक्षा होगी तथा आप दीर्घायु और अमरत्व प्राप्त करेंगे। यह मोक्ष-प्रदायक मंत्र भी है। इस मंत्र का प्रतिदिन जप करने वाले लोगों को उत्तम स्वास्थ्य तथा दीर्घायु का सुख मिलता है एवं अन्त में मोक्ष की प्राप्ति होती है।

– स्वामी शिवानन्द सरस्वती

योग की महिमा

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

स्वामी शिवानन्द जी ने 5 नवम्बर 1950 को सबेरे दिल्ली के योगाश्रम में पदार्पण किया। आश्रम के योगसाधकों द्वारा कुछ योगासनों का प्रदर्शन किया गया, जिसे स्वामीजी ने बड़ी रुचि और उत्साह के साथ देखा। इसके बाद उन्होंने उपस्थित जनसमूह को इस प्रकार सम्बोधित किया–

यहाँ के निष्ठावान् योगसाधकों के बीच स्वयं को पाकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। योगाश्रम के कार्यों को देखकर मुझे बहुत खुशी और सन्तुष्टि हो रही है। पहले ल्यालपुर में भी योगाश्रम हुआ करता था, जहाँ महिलाओं को भी योगासनों का प्रशिक्षण दिया जाता था। योगासन सभी कर सकते हैं, महिलाएँ भी और वृद्ध भी।

शारीरिक लाभ के साथ-साथ योगासन तुम्हें आध्यात्मिक लाभ भी प्रदान करते हैं। इनके अभ्यास से तुम कुण्डलिनी शक्ति जागृत करके उसे सहस्त्रार चक्र तक पहुँचाकर समाधि का आनन्द ले सकते हो। योगासनों से तुम अपनी स्मरणशक्ति बढ़ा सकते हो। ये ब्रह्मचार्य-पालन में भी सहायक होते हैं। श्री आत्मारामजी ने बड़े अच्छे ढंग से शिथिलीकरण की प्रक्रिया समझाई। शिथिलीकरण एक विज्ञान भी है और एक कला भी। अगर तुमने इस कला में प्रवीणता प्राप्त कर ली तो तुम सदा युवा बने रह सकते हो। तुम अपने मन पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त कर सकोगे और समाधि की अवस्था में भी प्रवेश कर पाओगे।

योग भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक संस्कृति की एक सरल, सस्ती और सुलभ व्यवस्था है। तुम्हें कीमती संसाधन खरीदने की आवश्यकता नहीं। इसके अभ्यास के लिये तुम्हें सिर्फ एक छोटे-से कम्बल की जरूरत है।

योगासनों का अगर पूरा लाभ उठाना है तो इसमें नियमितता बहुत जरूरी है। चाहे इन आसनों का अभ्यास पाँच मिनट के लिये ही करो, पर नियमित

ढंग से करो। यहाँ आओ और योग के ऐसे निपुण आचार्यों से आसन सीखो, जिन्होंने अपना पूरा जीवन योगासन के अध्ययन, अभ्यास और प्रचार के लिये समर्पित कर दिया है। अगर तुम नियमित योगाभ्यास करोगे तो तुम्हें रोग नहीं घेरेंगे। डॉक्टर के खर्चे से बचो। उत्तम स्वास्थ्य का आनन्द लो। ऋषियों की, हठयोग के प्रवर्तक आचार्यों की, इस आश्रम के संस्थापक श्री प्रकाश देव और उनके शिष्यों, श्री वोहरा एवं श्री आत्माराम जी की जय हो। भगवान की कृपा तुम सब को मिले।

इसके बाद स्वामीजी ने 'सॉन्ग ऑफ आसन्स' भी गाया।

बिरला भवन में भेंटवार्ता

योगाश्रम से स्वामी शिवानन्द जी बिरला भवन गये, जहाँ सेठ जुगल किशोर बिरला जी उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। जैसे ही स्वामीजी ने भवन में प्रवेश किया, सेठजी ने उनके चरणों में पुष्प अर्पित किए और उन्हें अन्दर ले गए। वहाँ दोनों में कुछ इस प्रकार बातचीत हुई–

स्वामीजी, कृपया मुझे मोक्ष प्राप्त करने के लिये कोई सरल साधना बताइये।

नाम-स्मरण। ईश्वर का निरंतर सुमिरन करना उनकी प्राप्ति की एकमात्र सरल साधना है।

परन्तु स्वामीजी, मन को यह कतई अच्छा नहीं लगता। मन भगवान के चरण-कमलों पर टिकना नहीं चाहता। यह तुरंत भागने लगता है। सफलता तो बड़ी दूर दिखाई देती है।

यह सच है। दीर्घकाल तक निरंतर अभ्यास ही इसका एकमात्र उपाय है। धीरे-धीरे यह चंचल मन विषय-भोगों से हटने लगेगा और आखिरकार ईश्वर के चरण-कमलों से बंध जायेगा।

एक बात और स्वामीजी। हम जप और कीर्तन भी करते हैं। पर हम ईश्वर से कुछ-न-कुछ माँगते भी रहते हैं। मुझे लगता है कि हमें ईश्वर से कुछ माँगना नहीं चाहिये। पर जरूरत पड़ने पर माँगें तो किससे माँगें?

महाराज जी, अगर आप बिना किसी कामना के जप करें तो ईश्वर स्वयं आपकी जरूरतों का ख्याल रखेंगे। आपको खुद चिंता करने की कोई जरूरत नहीं। निष्काम भक्ति चित्तशुद्धि का बहुत शक्तिशाली साधन है। आपको अपने आप ही सब मिलता जायेगा। अंत में भगवान तक मिल जाएँगे।

स्वामीजी, मेरे मन में एक और आशंका है। क्या आपको लगता है पत्थरों में चैतन्य होता है?

जी हाँ। और मूर्तियों में तो एक विशेष शक्ति भी होती है। ईश्वर के ऐसे कुछ अर्चावतार हैं जो विशेषकर कलियुग में भक्तों द्वारा आराधना के लिये अवतरित हुए हैं। हममें निश्चित रूप से इनमें पूरी श्रद्धा होनी चाहिये।

क्या आपको लगता है ईश्वर के दर्शन सम्भव हैं?

हाँ, बिल्कुल। भगवान ने मीरा के साथ नृत्य किया और उनके हाथ से माखन खाया। गिरधर गोपाल उनके लिये किसी वास्तविक व्यक्ति से कम नहीं थे। रामकृष्ण परमहंस के लिये काली से बढ़कर और कोई सत्य नहीं था। वे उनके साथ बात करते, खाना खाते और साथ खेलते भी थे।

स्वामीजी, ईश्वर के अवतार और उनकी महान् लीलाएँ सिर्फ इसी देश तक सीमित हैं या दूसरे देशों में भी अवतार पाये जाते हैं?

क्या ईशु भगवान के अवतार नहीं थे? मुहम्मद साहब भी अवतार थे। विभिन्न देशों और धर्मों के पीर-पैगम्बर भी अवतार ही थे। सभी अवतार परमात्मा के ही अंश होते हैं। पैगम्बर मुहम्मद करुणा की मूर्ति थे और उनका जीवन ऐसी अनेक दिव्य घटनाओं से परिपूर्ण था जो उनकी साधुता को दर्शाते हैं।

प्रस्थान से पहले स्वामी शिवानन्द जी ने बिरला भवन में गाँधीजी के प्रार्थना सभागृह के दर्शन किये और जिस स्थान पर उन्हें गोलियाँ लगी थीं, वहाँ कीर्तन भी किया।

ार के अधिवासियों तथा बिहार योग वि

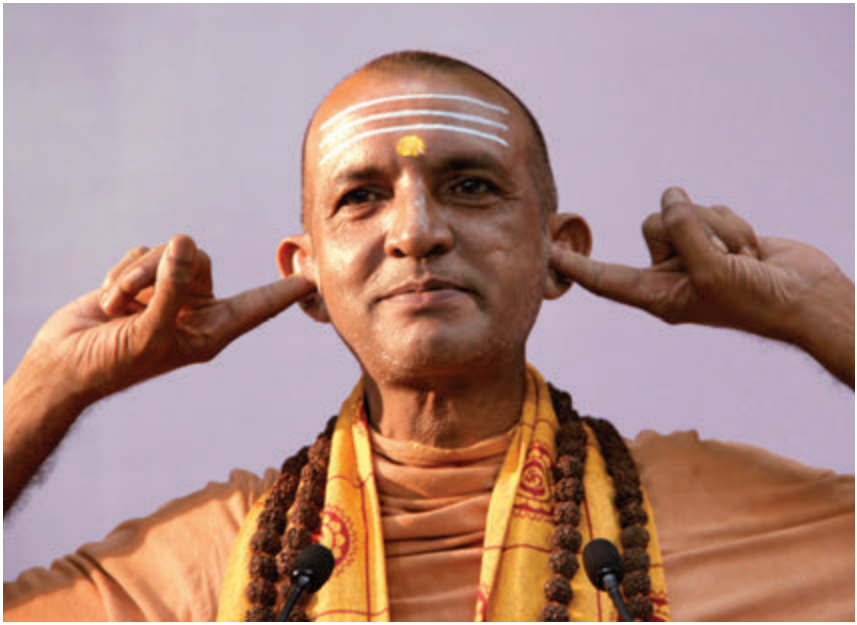

योग की विकास-यात्रा

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

हम इस समाज में योग के विकास के साक्षी रहे हैं, लेकिन आज जो लोग योग करते हैं वे योग के विकास के बारे में ज्यादा नहीं जानते। हम साठ के दशक में आश्रम आये थे और उस समय भारतवासी कहा करते थे कि योग तो साधुओं की चीज है, गृहस्थों को इसकी कोई आवश्यकता नहीं। अगर योग करोगे तो संसार का त्याग कर दोगे, इसलिए योग मत करो। हमारे भारतवासियों के मुख से ऐसे वाक्य निकलते थे और ऐसी ही परिस्थिति में हमलोगों ने योग प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया। हमारे गुरुजी ने ऐसे समय योग के बीज बोए, योग की खेती की, जब संसार में योग को कोई नहीं जानता था। आज भले ही दूसरे लोग उस फसल को काट रहे हैं, लेकिन योग शिक्षकों की प्रथम पीढ़ी का लक्ष्य मनुष्य के मन, भावना और कर्म संबंधी प्रतिभाओं का जागरण और उनके माध्यम से संपूर्ण मानव समाज का कल्याण रहा है। हम भी उसी लक्ष्य से जुड़े हैं, क्योंकि हमने भी उस प्रथम पीढ़ी की सेवा की, जिन्होंने संसार में योग विद्या को लाने का प्रयास किया।

साठ के दशक में जब योग का प्रचार शुरू हुआ तो सामान्यत: लोग योग को मात्र शारीरिक सौन्दर्य को प्राप्त करने का माध्यम समझते थे। उस समय लोग कहते थे कि योगासनों के द्वारा अपने शारीरिक सौन्दर्य को निखारो, कमर को पतला करो, चेहरे में तेज लाओ इत्यादि-इत्यादि। लेकिन सत्तर के दशक में योग का उपयोग तनाव प्रबंधन और तनाव मुक्ति के लिए होने लगा और उस समय योग पर अनेक अनुसंधान भी किये गये। मैं उस समय के एक अग्रणी योगाचार्य, स्वामी राम के विषय में बतलाता हूँ। उन पर मैनिन्जर फॉउण्डेशन, अमेरिका के डॉक्टरों ने एक अनुसंधान किया था कि वे अपनी हृदय-गति को रोक सकते हैं या नहीं। स्वामी राम ने अपनी हृदय-गति को पन्द्रह मिनट तक रोक दिया। उस समय उनके शरीर में नब्ज भी नहीं थी। चिकित्सा विज्ञान के अनुसार वह मृत्यु की स्थिति थी, लेकिन जब उनकी आँखें खुलीं तो वे सबसे बात कर रहे थे।

दूसरा उदाहरण देता हूँ अपने ही चाचा गुरु, स्वामी नादब्रह्मानन्द जी का, जो स्वामी शिवानन्द जी के शिष्य थे। उन पर इसी शोध संस्थान में अनुसंधान किया गया। हम उस समय वहाँ उपस्थित थे इस अनुसंधान को देखने के लिये। शीशे के तीन ऐसे चेम्बर बनाये गये जिनमें हवा बिल्कुल प्रवेश नहीं कर सकती थी। पहले चेम्बर में एक मोमबत्ती को जलाया गया, दूसरे में एक बन्दर को रखा गया और तीसरे में स्वामी नादब्रह्मानन्द जी को बैठाया गया। उनके पूरे शरीर पर मोम

लगाकर सभी रोम-क्षिद्रों को बंद कर दिया गया। साथ ही नाक, मुँह, गुदा द्वार, आँख, कान आदि अंगों को भी बंद कर दिया गया ताकि कहीं से वायु प्रवेश न कर सके। उन्होंने नाद-कुम्भक सिद्ध किया था, इसलिए उनसे कहा गया कि अब आप तबला बजाइये।

कुछ मिनटों के पश्चात् पहले चेम्बर की मोमबत्ती बुझ गई जिसका मतलब था कि उस चेम्बर में ऑक्सीजन समाप्त हो गया। दस-पन्द्रह मिनट के पश्चात् दूसरे चेम्बर में बैठा बन्दर बेहोश होकर गिर गया, मतलब उस चेम्बर में भी ऑक्सीजन समाप्त हो गया और कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा इतनी हो गई कि बन्दर बेहोश हो गया। लेकिन स्वामी नादब्रह्मानन्द जी ने एक घण्टे तक अपने श्वास को रोका। अगर हमलोग एक मिनट तक भी अपनी श्वास को रोकते हैं तो क्या हालत होती है, सब जानते हैं। गोताखोर बहुत प्रयास करके तीन या चार मिनट तक अपनी श्वास को रोक पाते हैं, उससे ज्यादा नहीं। उसके बाद उन्हें पानी से बाहर निकलना पड़ता है। लेकिन स्वामी नादब्रह्मानन्द जी ने एक घण्टे तक अपने श्वास को रोके रखा। उनका तो यहाँ तक कहना था कि मैं छः घण्टे श्वास नहीं लूँगा, लेकिन प्रयोग में निर्धारित किया गया था कि केवल एक घण्टे के लिए श्वास को रोकना है। उस एक घण्टे में वे लगातार तबला बजाते रहे, और जब टेपरिकॉर्डर का माइक्रोफोन उनके शरीर के किसी भी अंग के समीप लाया गया तो उनके शरीर से गुंजन की आवाज सुनाई पड़ती थी। उनके मस्तिष्क पर एक सिक्का रखा गया और वह सिक्का उनके सिर पर उछलता था। इसकी वीडियोग्राफी भी की गई। वे कहते थे कि यह सब प्राणों का कमाल है। यदि मनुष्य श्वास न ले, लेकिन उसके भीतर प्राण चैतन्य है तो बिना श्वास के भी वह जीवित रह सकता है। यह प्राणायाम की सिद्धि है।

अब तीसरे अनुसंधान के बारे में बतलाता हूँ जिसमें हमें जबरदस्ती पकड़कर शामिल किया गया था यह जानने के लिए कि ध्यान के समय मन की क्या स्थिति होती है। हमें एक कुर्सी पर बैठा दिया गया और हमारे पूरे शरीर पर यंत्र लगा दिये गये। फिर डॉक्टर अपने कम्प्यूटर में जाँच करने लगे कि हमारे शरीर पर लगे यंत्र काम कर रहे हैं या नहीं। पन्द्रह मिनट तक वे प्रयास करते रहे, लेकिन उनमें कोई संवेदना दिखलाई ही नहीं दी। डॉक्टर और वैज्ञानिक सोच में पड़ गये कि कहीं हमारा मशीन बेकार तो नहीं हो गया। दूसरे दिन हमें फिर बुलाया, नई मशीन लगाई, लेकिन फिर वही हुआ। उनकी मशीन ने काम ही नहीं किया। उन्होंने सोचा कि दूसरी मशीन में भी खराबी है, इसलिए उसको भी वापस भेज दिया। तीसरे दिन फिर बुलाया। मैं भी वहाँ बैठे-बैठे तमाशा देख रहा था कि भई, यह हो क्या रहा है!

तब एक वैज्ञानिक ने कहा कि आप कुछ सोचिए जिससे आपके मन में कोई उत्तेजना हो, कोई भाव प्रकट हो। हम देखना चाहते हैं कि क्या हमारी मशीन उस

भाव को पकड़ सकती है या नहीं। अमेरिका में रहते हुए बहुत वर्ष बीत चुके थे, हमें रसगुल्ले का ख्याल आया। आश्चर्य! जैसे ही रसगुल्ले का विचार मन में आया, मशीन की सुई हिलने लगी और जब हमने विचार छोड़ दिया तो सुई भी रुक गई!

वैज्ञानिकों ने कहा, 'हमने इस मशीन के द्वारा ऐसा परिणाम कभी नहीं देखा। क्या आप कोई जादू कर रहे हैं? मशीन के सारे कल-पुर्जे बिल्कुल ठीक काम कर रहे हैं, फिर भी हम कोई सूचना रिकॉर्ड नहीं कर पा रहे हैं।' हमने कहा, 'यह कैसे संभव है? हमें लगता है कि आपको मशीन चलाना नहीं आता।' उन्होंने दूसरे वैज्ञानिक को हमारी जगह बैठाकर बतलाया, 'देखिये, सभी कल-पुर्जे काम कर रहे हैं।' लेकिन जब उसी मशीन को दुबारा हम पर लगाया तो यंत्र काम नहीं किया। वैज्ञानिकों ने कहा, 'यह यंत्र कोई प्रतिक्रिया नहीं कर रहा है। ऐसा व्यवहार केवल मृत व्यक्तियों के शरीर पर लगाए जाने पर होता है।' मैंने कहा, 'मैं मरा तो नहीं हूँ, आँखें खुली हैं, आपके साथ बात कर रहा हूँ।' लेकिन उनकी मशीन में किसी संवेदना का आभास नहीं हुआ।

उस समय हम श्वास पर अपने ध्यान को केन्द्रित कर रहे थे, प्रत्याहार कर रहे थे, बाहर की दुनिया से अपने को अलग कर रहे थे। आँखें खुली थीं, लेकिन हम ध्यान का अभ्यास कर रहे थे, जिसके कारण न शरीर में और न ही मन में कोई उत्तेजना उत्पन्न हो रही थी। ऐसी स्थिति में मशीन क्या देखती! यह मैं किसी सिद्धि या उपलब्धि की बात नहीं कर रहा, बल्कि यह स्पष्ट करना चाह रहा हूँ कि एक योग साधक के जीवन में यह एक सहज अनुभूति है।

इस प्रकार हम अनेकों अनुसंधानों के साक्षी रहे हैं। प्रथम पीढ़ी के योग शिक्षक, एक निश्चित उद्देश्य और लक्ष्य के लिये योग को समाज के सामने प्रस्तुत करना चाह रहे थे। उनके जाने के बाद दूसरी पीढ़ी आई और ये लोग भी पहली पीढ़ी के उद्देश्य और लक्ष्य को लेकर आगे बढ़े। लेकिन अब योग के क्षेत्र में नये लोगों का आगमन शुरू हो चुका है और प्राय: सब लोग योग को एक धंधे के रूप में देखने लगे हैं। योग 'वायरल' हो गया है। हर शिक्षक ने योग के किसी एक पक्ष को पकड़ लिया है जो उसे अनुकूल लगता है और उसी का प्रचार करता है। इसलिए आज विश्व में ढेरों ब्रैण्डेड योग हैं। मैं किसी को दोष नहीं दे रहा हूँ, केवल एक बात आपके सामने रख रहा हूँ कि आधुनिक समय में जो लोग आये हैं उनका उद्देश्य मुख्य रूप से पैसा कमाना है, योग विद्या का प्रचार-प्रसार नहीं। नये-नये योग शिक्षकों के आने से एक ऐसे वातावरण का निर्माण हुआ है जिसमें हम समाज में योग को एक व्यवसाय के रूप में देख रहे हैं।

लेकिन अगर हम परम्परा को देखें तो प्रथम पीढ़ी की विरासत अभी भी हमारे समाज में विद्यमान है। उनसे जुड़े लोग अभी भी प्रयास करते हैं कि योग की विद्या को सही तरीके से समाज के सामने रखें। उनमें से प्रमुख संस्थान हैं बिहार योग विद्यालय, शिवानन्द आश्रम, कैवल्यधाम लोनावाला, अयंगार साहब का आश्रम और विवेकानन्द केन्द्र। हमारे भारत में किसी एक विशिष्ट परम्परा से जुड़ी ये पाँच-छ: संस्थाएँ ही हैं। बाकी सब ब्रैण्डेड और वायरल योग के विभिन्न रूप हैं, जिनका कमाई को छोड़कर अन्य कोई लक्ष्य नहीं है। मैं किसी की आलोचना नहीं कर रहा हूँ, लेकिन एक साधु के रूप में जो देखता हूँ उसको स्पष्ट कहता हूँ। आखिर अगर साधु सच नहीं बोलेगा तो कौन बोल सकता है।

एक बात और बतलाना चाहता हूँ कि सत्तर और अस्सी के दशक में योग से संबंधित कई अतीन्द्रिय पक्षों पर अनुसंधान और खोजें भी हुईं। सोवियत रूस के अनुसंधानों के बारे में एक किताब निकली थी—'साइकिक डिस्कवरीज़ बिहाइन्ड द आयरन कर्टन'। केवल रूस में ही नहीं, अमेरिका और इंग्लैण्ड में भी 'द पावर्स ऑफ ह्यूमन मांइड एक्सप्लोर्ड थ्रू योगा' जैसी किताबें छपी थीं। वहाँ की सेना और सरकार द्वारा किए गए विविध अनुसंधानों में यह जानने का प्रयास किया गया कि योग के द्वारा हम अपने जीवन की अतीन्द्रिय शक्ति को जागृत कर सकते हैं या नहीं। एक उदाहरण देता हूँ। रूस में एक अनुसंधान हुआ था जिसमें एक मादा खरगोश और उसके आठ बच्चों को लिया गया। मादा खरगोश को रिसर्च सेन्टर में रखा गया और उसके आठ बच्चों को एक पनडुब्बी में रूस से हजार मील दूर ले जाया गया। मादा खरगोश के माथे पर इलेक्ट्रोड्स लगे हुये थे जो उसकी मानसिक तरंगों को मॉनीटर कर रहे थे। एक हजार मील दूर खरगोश के एक बच्चे को मारा गया और उस समय मादा खरगोश एकदम विचलित हो उठी। उसके मस्तिष्क में जो तरंगें उत्पन्न हो रही थीं वे बहुत ही तीव्र और अधिक आवृत्ति वाली थीं।

इससे मालूम पड़ा कि जानवरों में भी एक भावनात्मक संबंध होता है। जब एक हजार मील दूर मादा खरगोश का बच्चा मर रहा था तो उसकी माँ विचलित हो रही थी। यही बात मनुष्यों पर भी लागू होती है। अगर माता और संतान एक-दूसरे से दूर हैं और संतान को कुछ होता है तो माता को उसका आभास होने लगता है। यह आभास क्यों और कैसे होता है? यह एक अतीन्द्रिय शक्ति है जो इन्द्रियों से परे है। सामान्य रूप से आप केवल अपनी इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त सूचनाओं पर ही निर्भर रहते हैं। मतलब जब आपको इन्द्रियों से कोई खबर मिलेगी तभी आप प्रतिक्रिया करेंगे, अन्यथा नहीं। लेकिन जब इन्द्रियों से कोई खबर नहीं, फिर भी आभास हो जाए, इसका मतलब आपकी अतीन्द्रिय शक्ति कार्य कर रही है।

अब प्रश्न उठता है कि क्या अतीन्द्रिय शक्तियों को और प्रबल बनाया जा सकता है? क्या इनके माध्यम से हम अपने विचारों का सम्प्रेषण कर सकते हैं? सेना के द्वारा इस पर प्रयोग किये गये। जहाँ पर दूरसंचार के साधन काम न करें वहाँ पर अपने विचारों के सम्प्रेषण द्वारा अपनी यूनिट से संपर्क किया जा सकता है क्या? इस पर जो भी प्रयोग हुए वे सभी गुप्त हैं। लेकिन हाँ, प्रयोग सफल थे। इस प्रकार अतीन्द्रिय शक्तियों के संबंध में यह तीसरे प्रकार का अनुसंधान हुआ था।

ये सभी कार्य पहली और दूसरी पीढ़ी के योग शिक्षकों के योगदान से हुए। लेकिन अब जो तीसरी और चौथी पीढ़ी के योग शिक्षक हैं, वे केवल अपने स्वार्थ के लिए कार्य कर रहे हैं, समाज के लिये नहीं। इसलिए अब आवश्यकता है कि हम योग की वास्तविकता को जानें और उसके लक्ष्य को अपने जीवन में अपनाने का प्रयास करें। तब जाकर हम इस विद्या को सुरक्षित रख पायेंगे।

–21 सितम्बर 2014, रेलवे ऑफिसर्स क्लब, दिल्ली

गुरु की शिल्पकारी

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

जिस प्रकार एक शिल्पकार पत्थर के भीतर छिपे सुन्दर स्वरूप को बाहर प्रकट करने के लिये पत्थर को तराशता है, छेनी-हथौड़ी मारता है, उसी प्रकार गुरु भी शिल्पकार होते हैं जो अपने शिष्य को तराशते रहते हैं। शिष्य को कुछ नहीं करना पड़ता है क्योंकि उसको तराशने का कार्य गुरु करते हैं। आप मन्दिरों में स्थापित सुन्दर मूर्तियों को देखकर मुग्ध होते हैं, लेकिन अगर वह मूर्ति निरे पत्थर के रूप में होती तो आप उसकी ओर देखते भी नहीं। आप मूर्ति को देखकर मुग्ध इसलिये होते हैं क्योंकि शिल्पकार ने उस पत्थर से एक सौन्दर्य को प्रकट किया है। हमारे जीवन की भी यही कहानी है, हम अपने गुरुजी की शिल्पकारी के उदाहरण हैं।

हम अपने गुरुजी के पास सबसे पहले चार वर्ष की अवस्था में आये थे। उस समय गुरुजी ने हमसे कहा कि तुम अभी बहुत छोटे हो, वापस घर जाओ। इसलिए हम उस समय वापस घर चले गए। छः साल के होने पर हम फिर उनके पास गये और उसके बाद घर वापस नहीं आये। छः से दस वर्ष की आयु तक हमने गुरुजी के सान्निध्य में अपना जीवन व्यतीत किया। इस काल में हमसे जिस स्वरूप को निकालना चाह रहे थे, उस स्वरूप को उन्होंने निकालने का प्रयास किया। मुझे

मालूम नहीं कि वह स्वरूप निकला है या नहीं, उनकी इच्छा और दृष्टि के अनुसार स्वरूप ठीक है या गलत, यह केवल वे ही जानते हैं, लेकिन इतना जरूर है कि जो कुछ भी हम जानते और कहते हैं, वह सब उन्हीं की देन है।

उन्होंने योग निद्रा के माध्यम से हमें विज्ञान में, शास्त्रों में, व्यावहारिकता में, हर चीज में प्रशिक्षित किया। चार साल के प्रशिक्षण के पश्चात् उन्होंने हमसे कहा कि अब तुम विदेश जाओ और स्वतंत्र होकर अपना काम करो। ग्यारह वर्ष की अवस्था में हमने विदेश के लिए प्रस्थान किया और सबसे पहले आयरलैण्ड गए। उसके बाद इग्लैंड

के विभिन्न शहरों में भी गए। हम छोटे थे और वहाँ पर बिना किसी स्कूल में नाम लिखवाए वीज़ा नहीं मिलता था। इसलिए हमें वहाँ पर स्कूल में अपना नाम लिखवाना पड़ा। गुरुजी की कृपा ऐसी रही कि भारत में तो हम कभी स्कूल गये नहीं और जब इग्लैंड में गये तो सीधे हाई स्कूल में प्रवेश किया और हाई स्कूल भी एक साल में पूरा किया। बारह वर्ष की उम्र में हमें ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से निमंत्रण आया कि तुम यहाँ आकर पढ़ाई करो। यह मैं सन् 1972 की बात बोल रहा हूँ। अगर उस समय हम कॉलेज में जाते तो सबसे कम उम्र वाले एशियाई स्नातक होते और यह एक रिकॉर्ड बनता।

लेकिन हमने वैसा नहीं किया। हमें आभास हुआ कि गुरुजी ने हमें छूट दे दी है और कहा है कि तुम जो करना चाहो कर सकते हो, हम तुम्हें स्वतंत्र करते हैं। उस जमाने में मोबाईल फोन नहीं थे। एक देश से दूसरे देश चिट्ठी जाने में एक महीना लगता था। उस समय हमलोग ट्रंक-कॉल करते थे, कभी-कभी कॉल लगने में तीन-चार दिन लगते थे, फिर भी बात नहीं हो पाती थी। लम्बे अंतराल तक गुरुजी से बात नहीं हो पाती थी। कभी-कभी जब वे अपनी योग-यात्राओं के दौरान आते थे तो उनसे मिलना होता था और तभी हम उनसे कुछ बात कर पाते थे। बाकी समय तो अपना निर्णय स्वयं ही लेना पड़ता था। जियें चाहे मरें, लेकिन निर्णय खुद से ही लेना पड़ता था।

उस समय हमने चिंतन किया कि मेरे लिये उपयोगी क्या है, मेरे जीवन की दिशा क्या होनी चाहिये? मेरे भीतर में जो संस्कार थे, उन्होंने कहा कि जिस मार्ग पर तुम चल रहे हो वही मार्ग तुम्हारे लिये उत्तम है, और मुझे यह विचार आया कि मुझे अधिक शिक्षा की आवश्यकता नहीं है। जब भारत में कभी स्कूल नहीं गये और विदेश में आकर सीधे हाई स्कूल में प्रवेश किया और उसे भी एक साल में पूरा कर दिया तो इसका मतलब क्या हुआ? गुरुजी कहते थे, देखो मनुष्य के मन में हर प्रकार का ज्ञान भरा हुआ है, लेकिन हम उस तक पहुँच नहीं पाते हैं। चाहे विद्या हो या विज्ञान, यह सभी मानव मस्तिष्क की ही देन है। कहीं बाहर से तो नहीं आया। उस अनुभव को हमने भीतर ही पाया, प्रयोग किया और उसको सत्य साबित किया। जो कुछ भी तुम करते और सोचते हो, जो ज्ञान और विज्ञान है, पूर्व में भी

था और भविष्य में भी रहेगा, क्योंकि वह तो एक ऊर्जा के रूप में चेतना का अभिन्न अंग है।

जब हम ग्यारह वर्ष के थे तब लंदन में चिकित्सकों की गोष्ठी में प्रवचन देना था। हम चिंतित थे कि चिकित्सकों की गोष्ठी में क्या बोलेंगे! उस गोष्ठी के एक दिन पहले रात को हमें स्वप्न आया और स्वप्न में हमने स्वयं को प्रवचन देते देखा। उस प्रवचन में जितने भी बिंदुओं पर बोला था, अगले दिन सब मुझे याद थे और वही बातें मैंने उस गोष्ठी में भी बोलीं। तब चिकित्सक हमसे पूछने लगे कि तुम्हें इसकी जानकारी कहाँ से मिली, क्योंकि तुम जिस विषय पर बोले हो उस पर हमलोगों ने हाल ही में अपना अनुसंधान आरम्भ किया है। जिस विषय पर हमने प्रवचन दिया था वह था 'बॉयो फीडबैक सिस्टम' जिसमें हृदय, मस्तिष्क, त्वचा आदि पर योग के प्रभावों का आंकलन किया जाता है।

हमने चिकित्सकों से कहा कि हम जो कुछ भी जानते हैं, वह सब हमारे गुरुजी ने हमें सिखाया है, इसके आगे क्या कह सकते हैं! मेरे अवचेतन और अचेतन में जो ज्ञान छिपा है, जो विद्या छिपी है, गुरुजी ने उसे योग निद्रा के माध्यम से जीवन में प्रकट किया। इसी कारण से हम मात्र तेरह वर्ष की अवस्था में यूरोप, दक्षिण अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया और दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों में भी अनेक योग केन्द्रों और आश्रमों की स्थापना करने और उनका सफलतापूर्वक संचालन करने में सक्षम हो पाए। ग्यारह से तेईस वर्ष की अवस्था तक हम विदेश में रहे। इस बीच में अपने गुरुजी से एक या दो बार मिलना हुआ, ज्यादा नहीं। लेकिन हमने जीवन में गुरु के अभाव को कभी नहीं अनुभव किया। हमें लगता था कि वे हमेशा हमारे साथ हैं, उनका साया हमेशा हमारे साथ है और आज भी है।

तेईस वर्ष की अवस्था में गुरुजी ने हमें वापस भारत बुलाया और योग आन्दोलन की जिम्मेदारी प्रदान की। वे स्वयं एक मुक्त परिव्राजक संन्यासी के रूप में अपनी सभी कृतियों एवं उपलब्धियों का त्याग कर पैदल निकल पड़े। हमने उस समय से योग आन्दोलन और संस्था का कार्यभार संभाला। पच्चीस वर्ष पश्चात्, सन् 2008 में स्वयं को सेवानिवृत्त कर लिया। अब मैं एक सेवा-निवृत्त संन्यासी हूँ। संस्था से

मेरा कोई लेना-देना नहीं है। अब संस्था का कार्य तीसरी पीढ़ी चला रही है। हम अपना कार्य करने के लिये स्वतंत्र हैं।

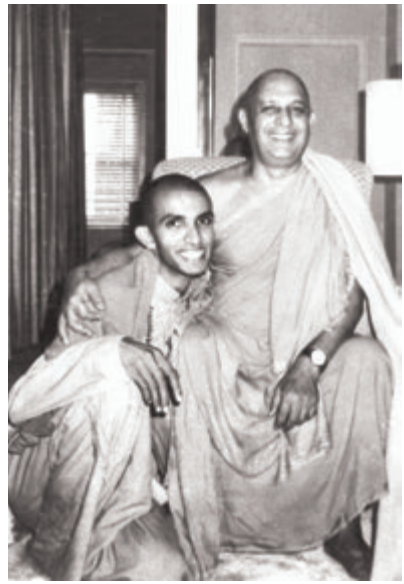

सन् 2009 के मई के महीने में हमारे गुरुजी ने हमसे कहा, 'निरंजन, अब तुम अपनी यात्राओं और योग प्रचार के कार्यों को स्थगित कर दो। तुम एक जगह जमो और अपने संन्यास जीवन को दृढ़ बनाओ।' तब उन्होंने अपने तीसरे मिशन की रूपरेखा हमारे सामने रखी। हमारे गुरुजी के तीन मिशन रहे हैं– पहला मिशन है योग, जिसका मुख्य केंद्र है बिहार योग विद्यालय, मुंगेर। उनका दूसरा मिशन है सेवा, और सेवा के माध्यम से लोगों की आँखों से दुःख के आँसू पोंछना। इस मिशन का मुख्यालय बना देवघर के पास छोटा-सा गाँव रिखिया। अंत में गुरुजी ने आदेश दिया कि अब तुम तीसरे मिशन, संन्यास पीठ की स्थापना करो। तुम मुंगेर में ही रहकर अपने संन्यास जीवन को दृढ़ करो तथा साधना और शिक्षा के रूप में आध्यात्मिक संस्कारों का प्रचार आरम्भ करो।

ये हमारे गुरुजी के तीन मिशन हैं जिनका एक-दूसरे से बहुत ही सुन्दर सम्बन्ध है। योग के द्वारा हम अपने जीवन की नकारात्मकता को परिवर्तित करके स्वयं को रचनात्मकता से जोड़ते हैं। तत्पश्चात् सेवा के द्वारा हम अपने स्वार्थ को थोड़ा कम करके निष्काम भाव से दूसरों के जीवन के अभाव को दूर करने का प्रयास करते हैं। और तीसरे मिशन के द्वारा जीवन में आध्यात्मिक संस्कारों को प्रज्ज्वलित करने का एक प्रयास होता है।

गुरुजी की कृपा और ऊर्जा के कारण ही हम पिछले पचास वर्षों में बिहार योग विद्यालय को एक मजबूत आधार प्रदान करने में सफल रहे हैं। पिछले वर्ष हम लोगों ने बिहार योग विद्यालय की स्वर्ण जयन्ती भी मनाई और इसके बाद हम बिहार योग विद्यालय से जुड़ी औपचारिक और अनौपचारिक जिम्मेवारियों से मुक्त हो गए। अब अगले पचास वर्षों के लिये योग की शिक्षा और दीक्षा किस प्रकार होनी चाहिये, उस पर हम विचार कर रहे हैं और अपने गुरुजी के निर्देशानुसार अपने संन्यास जीवन को दृढ़ बनाने का प्रयास कर रहे हैं।

–21 सितम्बर 2014, रेलवे ऑफिसर्स क्लब, दिल्ली

दिल्ली से सत्यम्-संदेश

स्वामी धर्मशक्ति सरस्वती प्रणीत 'मेरे आराध्य' से उद्धृत

अप्रैल 1956 में स्वामी सत्यानन्द दिल्ली में थे। स्वामी शिवानन्द जी ने माता कृष्णानंद से कहा, सत्यव्रत को पत्र लिख दो कि स्वामी सत्यानन्द परिव्राज्या लेकर अभी दिल्ली प्रवास कर रहे हैं। उन्हें पत्र लिखकर बुला लें। दिल्ली का पता भेज दो।

माता कृष्णानन्द का पत्र मिलते ही सत्यव्रत जी ने तुरन्त स्वामी सत्यानन्द जी को पत्र लिखा।

दिल्ली से स्वामी सत्यानन्द का पत्र मिला, 'गुरुदेव के आशीर्वाद से सत्यम् ने जो भी समझा है, उसी के आधार पर लक्ष्य की तरफ कदम बढ़ाया है। सत्यम् ने जीवन में चेतना पाई, तो सर्वप्रथम स्वतंत्र व्यक्तित्व का निर्माण किया। बुद्ध के जीवन संबल पर संन्यास धारण किया। वह यही बात जान पाया है कि उसे अपना मार्ग स्वयं ही तय करना होगा।

बारह वर्ष तक मैं शिवानन्द आश्रम में था, तब भी मेरा एक संन्यासी का ही स्वतंत्र व्यक्तित्व था, आज मैं आश्रम से बाहर हूँ, तो भी मेरा अपना ही व्यक्तित्व है। मैं यह नहीं चाहता कि पूज्य गुरुदेव के संदेश को प्रचारित करने का बहाना लेकर जन-संपर्क करूँ, यद्यपि ऐसा ही हो रहा है। मेरी वाणी, मेरे विचार, मेरे वर्तन शिवानन्द जी के युगान्तकारी संदेशों का संचरण कर रहे हैं। किन्तु एक अकेले साधु की हैसियत से मैं जहाँ भी जाऊँगा, संन्यासी बनकर, किसी संस्था का प्रतिनिधि बन कर नहीं।

मैं प्रत्यक्ष में ऋषिकेश का स्वामी सत्यानन्द हूँ, अप्रत्यक्ष में प्रच्छन्न रूप से शिवानन्द शिष्य हूँ। अपने अलग मंच से गुरुदेव के गीत गाऊँगा और उनके उपदेशों को उदार और उपयोगी तथा जन-व्यापक रूप दूँगा। जीवन की विभीषिकाओं को शान्त करने की गुरुदेव की जो देन है, वह मेरी प्रेरणा और कार्य-प्रणाली बन कर रहेगी। इसी मंच पर से मैं न केवल एक संस्था के पास जाऊँगा, बल्कि प्रत्येक संस्था के द्वार मेरे लिए खुले रहेंगे। मैंने यही समझा है कि मुझे जाना है, क्या शहर, क्या नगर, जहाँ जाने का आदेश होगा, चल दूँगा। मैंने इस पर न सोचा है और न ही सोचूँगा।

पूज्य गुरुदेव से आशीर्वाद पाकर चल पड़ा हूँ। किधर जाऊँगा, कब जाऊँगा, यह पता नहीं। मेरा कार्यक्रम निश्चित नहीं है, कहीं भी हो जाता है। श्री हनुमान प्रसाद माथुर और मुक्तारानी (शिवांजलि) बहुत मदद दे रहे हैं।

आपका गाँव नन्दग्राम है। मेरी भावनाओं के अन्त:स्थल में नन्दग्राम के प्रति आकर्षण है। आप लोगों ने मुझे बुलाया है, जरूर आऊँगा। मुझे कुछ ऐसा आभास

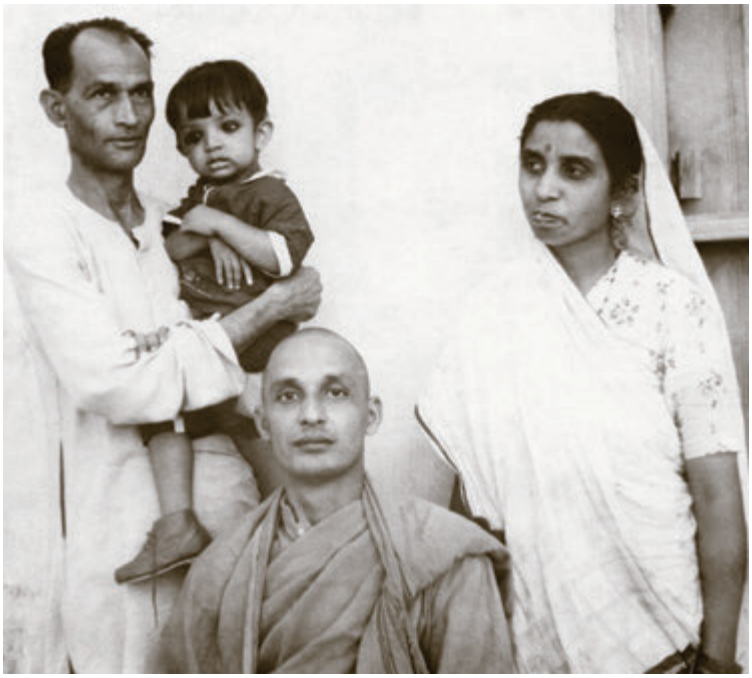

हो रहा है कि वहीं से मेरा काम शुरू होगा। नन्दग्राम ही मेरा सारनाथ बनेगा। मेरा नाम सत्यम् है, आपका नाम सत्यव्रत, आपमें मेरे व्रत की विशेषता है।

मैं अकेले ही विचरण कर रहा हूँ। परिव्राजक अकेले ही विचरते हैं। परिव्राजक का मण्डली के साथ जाना उसके उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकता। परिव्राजक जीवन के उद्देश्य की दो धारायें होती हैं–साधना का पुष्टिकरण और ज्ञान का वितरण। ये कार्य उसे अकेले ही करने पड़ते हैं। मण्डली के साथ जाने से वह परिव्राजक नहीं, प्रचारक हो जाता है, जिसके जीवन में 'साधना के पुष्टिकरण' का तत्त्व नहीं होता। सत्यम् प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत है।'

स्वामी सत्यम् का दूसरा पत्र मिला, 'आपका पत्र मिला। मनी-ऑर्डर भी मिला। यहाँ पर लोगों के अनुरोध पर बुद्ध जयन्ती के अवसर पर प्रवचन के लिए मंजूरी दे दी है, प्रोग्राम प्रकाशित भी हो गया है। मेरा आना 23 मई के बाद ही होगा।

भगवान बुद्ध की जयन्ती की धूम है। जोर-शोर से मनाते हैं, पर यशोधरा को दुनिया वाले शायद ही कभी याद करते होंगे। भूल ही गये हैं कि यशोधरा के बिना बुद्ध अपूर्ण ही रहते। यशोधरा का त्याग बुद्ध के त्याग से श्रेष्ठ है। उसकी तपस्या पूर्णत: निष्काम ही रही; बुद्ध की साधनचर्या का एक उद्देश्य था। वे चले और निर्वाण पाते ही ठहर गये। वह अनन्त पथ पर चली, चलती ही गई।

बुद्ध चर्या की भूमिका में विकल्प रहे, विचित्रताएँ, भ्रम और अपूर्णता रही। यशोधरा की तपस्या, सनातन प्रकृति की गंभीरता की पार्थिव छटा थी, जो जीवन का नियम है। बुद्ध ने घर छोड़ा। वह घर पर ही रही। उन्होंने त्याग द्वारा निर्वाण पाया। उसने न त्याग किया, न ही निर्वाण की अपेक्षा की। स्त्री की सर्वश्रेष्ठ साधना-तपस्या यही है, क्योंकि उसमें चिर-संतोष जो है। पुरुष तो स्वभाव से ही असंतोषी और विक्षिप्त विचारों का पिटारा है। बुद्ध चर्या भी कुछ ऐसी ही थी। यशोधरा त्याग और भोग के संघर्षों में सच या झूठ मानने वालों को चुनौती देती रही। अन्यथा वह भी जीवन की उरुबेला में सघन जालों में फँसी रहती या फिर कपिलवस्तु के वैभव में अपने को भुला देती। क्या बुद्ध ऐसा कर सकेंगे?

क्या सचमुच किसी 'परम आनन्द' की खोज में बुद्ध चर्या का अनुसरण करना सृष्टि के सनातन सिद्धान्तों के अनुरूप है अथवा यशोधरा को अपने अनन्त के विस्तार को 'त्याग' और 'भोग' की परिधि में ले जाना चाहिए?

सत्य तो यह है कि यशोधरा ने अनन्त बुद्धत्व को अपने में ही पाया और सिद्धार्थ मात्र गौतम ही रहे। और सनातन साधना के पथ पर नहीं चल सके। खोजते रहे, पर नहीं पा सके, और इन्हीं बुद्ध की जयन्ती सारी दुनिया मना रही है। कितने वर्ष बीत गए इन बातों को, पर संत-महात्मा का अवतरण जो होता है, एक महान् संदेश को लेकर, और साधु का कर्त्तव्य होता है, उन बातों को बार-बार दुहराना, जिससे लोग उन बातों को भूल न जाएँ और महान् आत्माओं के चरित्र से कुछ शिक्षा लें।

आप लोग मेरे विचार से परिचित हो ही गये होंगे। यहाँ का प्रोग्राम पूरा होते ही वहाँ आऊँगा। हमारे रहने व प्रोग्राम के बारे में ज्यादा आडम्बर नहीं करना। हरि ॐ।'

उनके पत्र पढ़कर उन महान् संत की छवि में हम विभोर हो गये। याद आया, जब अप्रैल 1953 में ऋषिकेश गये थे, वहाँ पुस्तक-पत्रिकाएँ ली थीं, उनको उलट-पलट कर देख रहे थे, तब 8 सितम्बर 1950 के एक लेख पर आँखें अटक गईं। उसे पढ़ा और कई बार पढ़ा। लगता कि वामन-सा सुदर्शन संन्यासी हँसते हुए कह रहा हो–

'श्री गुरुदेव की आन्तरिक प्रेरणा सजीव हो रही है, मैं उनके ऋण से उऋण तभी हो सकता हूँ जब मैं उनके उपदेश, उनका संदेश जन-जन के हृदय में भर दूँ और स्वयं इस दारुण जग-जीवन पथ पर उनके चरणारविन्द की विभूति के सौरभ में ओत-प्रोत हो उनकी तपोल्लसित स्निग्ध चन्द्रछाया में महा-निर्वाण, परमधाम तथा सद्गति की ओर चिरन्तन युगों के साथ चलता रहूँ और अविश्रान्तगत्या चलता रहूँ। शाश्वत सत्य और अविस्मरणीय परमार्थ के अखिल सौन्दर्य सज्जित महामहनीय परात्पर की ओर ...'

मानव जीवन के पड़ाव

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

मोटर गाड़ी चार चक्कों पर चलती है। अगर एक चक्का पंक्चर हो जाए तो गाड़ी आगे नहीं बढ़ेगी। ऐसे में ड्राइवर क्या करता है? जैसे ही एक चक्का खराब हुआ, चक्के को बदलकर उसकी मरम्मत करवाता है ताकि फिर कोई पंक्चर हो तो दूसरा चक्का तैयार हो लगाने के लिये। जब तक चारों चक्के ठीक रहते हैं, गाड़ी बिना किसी दिक्कत के अच्छे से चलती है।

इसी तरह अपने जीवन में भी चार चक्के हैं जो भगवान ने हमें दिये हैं। अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष के चार चक्के मानव जीवन में चार पड़ाव होते हैं। वैदिक परम्परा में कहा गया है कि मनुष्य को अपने जीवन में इन चार परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है। अर्थ के लिये, मतलब अपने और अपने परिवार की समृद्धि और सम्पन्नता के लिये मनुष्य प्रयत्नशील रहता है। यह कहलाता है अर्थ पुरुषार्थ। काम दूसरा पुरुषार्थ है जिसका सम्बन्ध इच्छाओं की पूर्ति से है। धर्म का सम्बन्ध कर्त्तव्य पालन से है और मोक्ष का सम्बन्ध अपने आपको संसार के मोह और माया से अलग करके जीने से है।

अब हुआ क्या कि किसी काल में किसी चिंतन या विचारधारा के कारण लोगों ने कहा कि गृहस्थ के लिये अर्थ एवं काम का पुरुषार्थ ही आवश्यक है और एक त्यागी के लिये धर्म एवं मोक्ष का। वहीं पर गलती हो गई कि हम चार पहिये वाली गाड़ी दो चक्कों पर खींच रहे हैं, दो चक्के पंक्चर हैं। महर्षि वेदव्यास, जो महाभारतकालीन ऋषि रहे हैं और जिन्होंने वेदों को चार भागों में विभाजित किया है, उनके जीवन की एक घटना है। चार वेद और अठारह पुराण लिखने के बाद एक बार वे निराश हो गये कि लोगों को इतनी आध्यात्मिक शिक्षाएँ देने के बावजूद भी मनुष्य उन शिक्षाओं का पालन नहीं कर रहे हैं। गृहस्थ जीवन और आध्यात्मिक जीवन में मनुष्य ने भेद किया है। तब निराश होकर वे कहते हैं कि मैं दोनों हाथ ऊपर उठाकर कहता हूँ कि जो व्यक्ति धर्म का पालन करेगा उसके लिये अर्थ भी सिद्ध है, काम भी सिद्ध है और मोक्ष भी सिद्ध है। उसके आगे वे एक बात और कहते हैं–'लेकिन मेरे बात को कोई सुनता नहीं है।' यह उनका कहना है।

अब सोच लो कि जब ऐसा महान् व्यक्ति कहे कि मैं आश्वासन देता हूँ, अगर तुम धर्म का पालन करोगे, अपने कर्त्तव्यों का पालन करोगे तो मोक्ष भी सिद्ध हो जायेगा, अर्थ भी सिद्ध हो जायेगा और काम भी सिद्ध हो जायेगा, लेकिन मेरी बात को कोई सुनने को तैयार नहीं है। भौतिकता में लिपटे मनुष्य ने इतना समझाने के बावजूद भी केवल अर्थ और काम को अपने जीवन का ध्येय माना। त्यागी ने भी

इतना कहने के बावजूद धर्म और मोक्ष को अपने जीवन का ध्येय माना और दोनों के जीवन में संतुलन नहीं है।

हमारे ऋषि-मुनि इन चारों परम्पराओं को जीते थे। रहते थे जंगल में लेकिन उन्हें सब कुछ प्राप्त था। राजा अपनी सेना के साथ किसी ऋषि के आश्रम में जाता था तो वह ऋषि, जो जंगल में रहता था, पूरी सेना के लिये व्यवस्था कर सकता था। मतलब उनके पास अर्थ का अभाव नहीं था। वे स्वार्थी नहीं थे, एक संतुलन था। अर्थ का त्याग करने की भी आवश्यकता नहीं है। आप जो कहते हो कि साधु को अर्थ से क्या मतलब, पैसे से क्या मतलब, यह आपके अपने मन की बात है। क्या साधु हवा खाकर जीवित रहेगा और आप छप्पन भोग लगाओगे! अच्छा तरीका खोजा है आपने, खुद खायेंगे छप्पन भोग पर साधु से कहेंगे, आप तो हवा खाकर भी जी सकते हैं। वाह रे वाह!

हमारे मनीषियों ने कहा कि नहीं, साधुता में भी सम्पन्नता होती है। जब विश्वामित्र अपनी सेना के साथ वशिष्ठ जी के आश्रम गए तो वहाँ पर उन्होंने विश्वामित्र के दस हजार सैनिकों के लिए भोजन और विश्राम का प्रबन्ध तत्काल किया था। कहानी आती है कि कामधेनु थी, लेकिन कामधेनु का मतलब क्या? वह सामर्थ्य, वह उपलब्धि, वह अर्थ जिसके कारण वे सबका सम्मान और सत्कार कर पाते थे। हमारे मनीषियों और ऋषियों ने त्यागमय जीवन व्यतीत किया, लेकिन उस त्यागमय जीवन में भी उनके पास भौतिक सम्पन्नता रही है। हाँ, उससे वे आसक्त नहीं थे।

हमारे गुरुजी का जीवन देख लीजिये। उन्होंने एक विश्वव्यापी योग आन्दोलन का सृजन किया। जहाँ भी जाते थे, फर्स्ट क्लास में जाते थे। बड़े-बड़े राष्ट्राध्यक्षों से उनकी मुलाकात होती थी। सारा विश्व उनको सिद्ध गुरु मानता था, लेकिन उन्हें अपनी उपलब्धियों से कोई लगाव नहीं था। उनके मन में यही भाव था कि 'मैं संन्यासी हूँ और संन्यासी ही रहूँगा' और संन्यासी की आवश्यकता है दो धोती और दो रोटी। उसका बैंक बैलेंस दूसरों के लिये है। गुरुजी कहते थे कि हूँ तो मैं संन्यासी, लेकिन लक्ष्मीजी ने मुझे ब्लैंक चेक दिया है। उन्होंने कहा है कि सत्यानन्द! जब तक तुम इस धन का उपयोग दूसरों के जीवन के अभावों को दूर करने के लिये करोगे, तुम्हारे लिए यह ब्लैंक चेक है, लेकिन जिस दिन तुम इसका एक अंश भी अपने लिये प्रयोग में लाओगे, ब्लैंक चेक हट जायेगा।

हमारे गुरुजी ने इस आदर्श को जीवनभर जीया। जब उन्होंने आश्रम का त्याग किया, अपने साथ केवल दो धोती ले गये। हमने उन्हें हजार रुपये देने चाहे, लेकिन उन्होंने कहा, नहीं, मुझे तुम केवल 108 रुपये दो, एक प्रतीक के रूप में, क्योंकि मेरे गुरुजी ने भी मुझे आश्रम से जाते समय 108 रुपये दिये थे। अब मेरा चेला आश्रम से जाते समय मुझे 108 रुपये दे रहा है। और उसे लेकर वे निकल पड़े, पैदल। ट्रेन के थर्ड क्लास कोच में सफर किया। हमने उनसे कहा कि हम आपको फर्स्ट क्लास का टिकट कटा देते हैं, पर उन्होंने कहा, 'नहीं, मैं कोई अधिकारी नहीं, संन्यासी हूँ और संन्यासी की तरह रहूँगा।' और वह भी किस उम्र में? पैंसठ की उम्र में। जब मनुष्य सुख, सुविधा, सुरक्षा और व्यवस्था की खोज करता है, अपने बुढ़ापे के बारे में चिंतित रहता है, उस समय उन्होंने अपनी सभी उपलब्धियों का त्याग किया और निकल पड़े पैदल और अकेले। हमने आज तक किसी अन्य संन्यासी को ऐसा करते नहीं देखा। प्राय: सभी पद-प्रतिष्ठा या धन-सम्पत्ति के लिये प्रयास करते हैं, अपने जीवन के आदर्श को सिद्ध करने के लिये नहीं। लेकिन हमारे गुरुजी ने वह काम किया जो पूर्वकालीन ऋषि-मुनि किया करते थे। सब कुछ होते हुए भी उन्होंने अनासक्त भाव से अपना संन्यास जीवन व्यतीत किया और अन्त तक उनका यही आचरण रहा।

आज भी जब हमारा अन्य संन्यासियों से मिलना होता है तो वे कहते हैं कि इस धरती पर स्वामी सत्यानन्द ही एक ऐसे संन्यासी हैं जिन्होंने अपने जीवन में सभी कर्मों और धर्मों का पालन किया है। आज तक कोई दूसरा संन्यासी ऐसा नहीं कर पाया। हिमालय की गुफाओं में बैठे संन्यासी यह बात कहते हैं। उन्होंने कभी श्री स्वामीजी को देखा नहीं, लेकिन अन्तरात्मा से उनकी उपलब्धि और सिद्धि को जानते हैं।

यह है ऋषि-मुनियों की परम्परा। चार पुरुषार्थों का योग हर मनुष्य के जीवन में होना चाहिए। दोष हमारा है कि हमने इन चार पुरुषार्थों को दो भागों में विभाजित कर दिया, एक संसारियों के लिये और दूसरा त्यागियों के लिये। वहीं पर हम मार खाये, हमारी सभ्यता मार खाई। इसीलिए इतनी समृद्ध विचारधारा के रहते हुए भी आज हम अंधकार में भटक रहे हैं। आप अर्थ और काम के लिये अवश्य प्रयत्नशील रहो, लेकिन अपने जीवन में धर्म और मोक्ष के लिये भी एक लघु प्रयास अवश्य करो। इसीलिये हम जैसे साधु-संन्यासी लोग मंत्र देते हैं, योग सिखाते हैं। नहीं तो हमसे आपको क्या मतलब? आपने तो अपनी संस्कृति का त्याग किया है, लेकिन हमने नहीं। आपने अपने चिंतन का त्याग किया है, हमने नहीं। आप अपनी साधना, अपने आचरण से दूर हुए हैं, हम नहीं। जब भी साधु समाज में आता है, यही कहता है कि धर्म का पालन करो और मोक्ष के लिये प्रयत्नशील रहो। साधु यही चाहता है कि जो दो चक्के आपने पंक्चर किए हैं, उनकी मरम्मत हो जाए और आपकी गाड़ी फिर से सक्षम बन जाए, इस अनंत यात्रा पर चलने के लिये।

–21 सितम्बर 2014, त्यागराज स्पोर्ट्स स्टेडियम, दिल्ली

ध्यान और मंत्र

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

ध्यान की अनेकों पद्धतियाँ होती हैं। जितने लोग, उतनी प्रकार की ध्यान पद्धतियाँ। कोई कहता है कि सूर्य पर ध्यान करो, कोई कहता है जल पर ध्यान करो, कोई कहता है तारे पर ध्यान करो, कोई कहता है मंत्र पर ध्यान करो, कोई कहता है श्वास पर ध्यान करो, कोई कहता है ईश्वर के स्वरूप पर ध्यान करो। अगर एक करोड़ आदमी हैं तो एक करोड़ ध्यान की पद्धतियाँ भी हैं। हर व्यक्ति के मन में ध्यान करने का अपना एक तौर-तरीका होता है, लेकिन योग में ध्यान की पद्धति निश्चित है। वह है एकाग्रता और उस एकाग्रता की वृद्धि। कबीरदास जी का एक पद है–

ऐसा जाप जपो मन लाई, सोऽहम् सोऽहम् सुरता गाई।
छः सौ सहस इक्कीसौं जाप अनहद उपजै आपै आप॥

सुरता का मतलब होता है श्वास। इस पद में कबीरदास जी कहते हैं कि तुम्हारा ध्यान इस प्रकार का लगे कि श्वास के साथ सोऽहम् मंत्र का उच्चारण होता रहे। एक मिनट नहीं, दो मिनट नहीं, चौबीस घंटे एक वृत्ति को अपने भीतर धारण करो। चौबीस घंटे कैसे? आप चौबीस घंटे में इक्कीस हजार छः सौ बार श्वास लेते हो। इस तरह जब चौबीस घंटे हमारा मन एक बिन्दु में केन्द्रित हो जायेगा, तब *अनहत उपजै आपै आप* मतलब आन्तरिक प्रतिभा की जागृति स्वतः होगी।

जब हमारे गुरुजी अपनी उपलब्धियों का त्याग कर क्षेत्र संन्यास लेकर हमें योग आन्दोलन की जिम्मेदारी सौंप कर पुनः एक परिव्राजक साधु के रूप में निकले और उसके पश्चात् देवघर के समीप रिखिया ग्राम में आकर बसे, तब उन्होंने हमलोगों से कहा कि मुझे ईश्वर से आदेश मिला है कि मैं भगवन्नाम का जप निरंतर करूँ। लेकिन उस आदेश की पूर्ति के लिये मैं तुम लोगों से एक काम चाहता हूँ। क्या काम? गेट के बाहर साईन बोर्ड लगा दो कि आश्रम में कोई नहीं आयेगा। वहाँ हमलोगों ने साईन बोर्ड लगा दिया, 'फिर मत आना।' आप में से जो लोग गुरुजी की पंचाग्नि तपस्या के समय दर्शन के लिये आए होंगे, उन्होंने देखा होगा वह बोर्ड, 'फिर मत आना'। लोग पूछते भी थे कि स्वामीजी, आपने लिख दिया है 'फिर मत आना', ऐसा क्यों? क्या आपका दर्शन और सत्संग हमें नहीं मिलेगा?

जवाब में श्री स्वामीजी कहते थे, 'देखो भाई! जितना बोलना था बोल दिया, अब कुछ शेष नहीं है। अगर तुम मुझसे मिलने के लिये आते हो तो मुझे कम-से-कम पाँच मिनट समय तुम्हें देना ही पड़ेगा। मतलब पाँच मिनट मेरा ध्यान मंत्र से हट जायेगा। तुम आते हो सत्संग के लिये और अपेक्षा रखते हो कि स्वामीजी

हमसे मिलेंगे, बात करेंगे। लेकिन अगर हम तुम्हारी इच्छा के अनुसार काम करेंगे तो हमारी साधना भंग हो जायेगी, पन्द्रह मिनट के लिये ही सही।'

इसलिए उन्होंने सबसे कह दिया कि मेरे पास नहीं आना। उसके बाद उन्होंने अष्टोत्तरशतलक्ष, यानि 108 लाख मंत्रों का पुरुश्चरण आरम्भ किया। उस समय जब हम रिखिया जाते थे, हमने कभी उन्हें बिस्तर पर लेटा नहीं देखा। हमेशा बैठे देखा और माला हाथ में। उस समय उनके पास जाने के लिये केवल दो-तीन व्यक्तियों को अनुमति थी। जितनी बार हम उनके पास गये, उन्हें कभी खड़े होते या टहलते नहीं देखा। चौबीस घंटे केवल बैठकर मंत्र जप। दैनिक क्रियाओं के लिये समय निश्चित था, उसके बाद फिर स्थिर हो जाते थे। अन्त में उन्होंने कहा कि अब मैं चौबीस घंटे बिना मन को हटाये अपना मंत्र जप कर चुका हूँ। मेरी साधना अब पूर्ण होती है।

हम आपसे यह बात इसलिये बोल रहे हैं ताकि आपको समझ में आए कि ध्यान में विक्षेप नहीं होना है। विक्षेप को समाप्त करने के लिये कुछ ऐसी विधि को अपनाना पड़ता है, जो आपके मन को पकड़कर रखे। उनमें से एक विधि है अजपा-जप, जिसके बारे में कबीरदास जी ने कहा है और जिसकी साधना हमारे गुरुजी ने सिद्ध की है।

अजपा-जप की यह साधना क्या है? बहुत ही सरल है। कुर्सी पर बैठो, जमीन पर बैठो, आराम से बैठो, सीधा बैठो, टेढ़ा बैठो, कोई फर्क नहीं पड़ता। अगर एक आसन में बैठ सकते हो तो उत्तम है, लेकिन बैठने का अभ्यास नहीं है तो चाहे जैसे बैठो, बस अपने मन को मंत्र के साथ जोड़कर रखो। गुरुजी भी कहते थे, सोफा पर बैठना है तो सोफा पर बैठो, कुर्सी पर बैठना है तो वह भी ठीक है, जमीन पर बैठना है तो जमीन पर बैठो, आँखें बन्द रखनी हैं तो बन्द रखो, खुली रखनी

हैं तो खुली रखो, लेकिन ध्यान तुम्हारा केन्द्रित रहे श्वास पर और उस श्वास को नाभि से भ्रूमध्य तक आते देखो, फिर भ्रूमध्य से नाभि तक नीचे जाते देखो। मात्र कल्पना करो, नाभि से भ्रू-मध्य के बीच एक पारदर्शी नली का अनुभव करो और उसमें श्वास को ऊपर आते और नीचे जाते देखो। पाँच मिनट तक इस कल्पना, इस अनुभव को विकसित करो। जब मन इस क्रिया में रम जाता है और श्वास को आप इस नली में ऊपर और नीचे आते देखने लगते हो तब फिर सोऽहम् मंत्र को श्वास के साथ जोड़ दो। जब श्वास लेते हो तो उससे 'सो' का स्पन्दन प्रकट होता है, और जब श्वास छोड़ते हो तो उसकी ध्वनि होती है 'हम्'। मानसिक रूप से इस मंत्र का ध्यान श्वास के साथ करते जाओ, पाँच-दस मिनट तक, पन्द्रह मिनट से ज्यादा नहीं। उसके बाद जो दिनचर्या का काम करना है करो।

अजपा-जप एकाग्रता के लिये बहुत ही प्रबल और शक्तिशाली क्रिया है। इसमें एक साथ बहुत कुछ हो रहा है। मंत्र का जप हो रहा है, श्वास को नियंत्रित करने से शरीर, इन्द्रियों एवं भावनाओं की उत्तेजना शान्त हो रही है, एकाग्रता की वृद्धि भी हो रही है । इस प्रकार हम श्वास का ख्याल करके शरीर एवं इन्द्रियों के विक्षेपों को दूर कर लेते हैं और मंत्र का ख्याल करके हम मानसिक विक्षेपों को दूर करते हैं। जब हर प्रकार के विक्षेप दूर हो जाते हैं, तब जाकर मन उस मंत्र के प्रभावों का अनुभव करता है। मंत्र का मुख्य प्रभाव यह है कि वह आध्यात्मिक ऊर्जा को जागृत करता है।

हमारे गुरुजी कहते थे कि मनुष्य जीवन का लक्ष्य आध्यात्मिक सजगता और ऊर्जा की प्राप्ति है। इतना कर लोगे तो उस चिंतन को जी पाओगे जो इस वैदिक मंत्र में निहित है–

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

पूर्ण से पूर्ण को जोड़ दो तो क्या होता है? पूर्ण ही रहता है। पूर्ण से पूर्ण को घटा दो, अपूर्ण नहीं होगा, पूर्ण ही रहेगा। यह जो आध्यात्मिक तत्त्व हर व्यक्ति के जीवन में व्याप्त है वह अपूर्ण कभी नहीं रहता, उसका स्वरूप हमेशा पूर्ण ही है। उसी पूर्णता का आभास और अनुभव मनुष्य को जब प्राप्त होता है तब लगता है कि मैंने जीवन में ईश्वर के अनुग्रह को प्राप्त कर लिया है। तब वह ईश्वर के प्रकाश में अपना जीवन व्यतीत करता है।

आज हमने आपको मंत्र और ध्यान के बारे में विभिन्न उदाहरणों के साथ इसलिए बतलाया ताकि आप इसे एक धार्मिक मान्यता के रूप में न लें, बल्कि इसे एक वैज्ञानिक और व्यावहारिक पद्धति के रूप में समझें और जीवन में इसके लाभ को प्राप्त करने का प्रयास करें।

–20 सितम्बर 2014, त्यागराज स्पोर्ट्स स्टेडियम, दिल्ली

कल्पतरु की छाँव में

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

आज भारतीय जीवनशैली और नैतिक मूल्यों में बहुत गिरावट आ गई है। भारतीय संस्कृति लुप्त होती प्रतीत होती है। ऐसी स्थिति में इसकी अमूल्य विरासत को कैसे बचाया जाए?

हम इस प्रश्न से सहमत नहीं हैं। हमारी भारतीय संस्कृति अनेक थप्पड़ खाई है, लेकिन आज तक मरी नहीं है, जीवित है। विश्व की सभ्यताएँ मिट चुकी हैं, विश्व की जातियाँ मिट रही हैं और विश्व की संस्कृति भी समाप्त हो रही है जिसका एक प्रभाव हम अपने भारतवर्ष में भी देखते हैं, किन्तु हमें यह भी मालूम है कि जैसे तेल पानी के ऊपर से बह जाता है, वैसे ही पाश्चात्य संस्कृति का असर भी हमलोगों की संस्कृति के ऊपर से बह जायेगा। हमारा जल हमेशा शुद्ध ही रहेगा।

हमारे देश में संस्कृति की परिभाषा इस प्रकार दी गई है– *सम्यक् कृतेन इति संस्कृति:*। प्राय: संस्कृति को अंग्रेजी में अनुवाद करके कल्चर कहते हैं और नाच, गाना, संगीत आदि-आदि को कल्चरल प्रेज़ेन्टेशन कहते हैं, सांस्कृतिक कार्यक्रम कहते हैं। लेकिन ये वास्तव में सांस्कृतिक कार्यक्रम नहीं हैं। ये तो जाति के कार्यक्रम हैं। हर जाति का अपना एक संगीत है, कला है, निपुणता है और उसी के प्रदर्शन को आप सांस्कृतिक कार्यक्रम कह देते हो। नाइट क्लब में रातभर डांस करने को भी पाश्चात्य संस्कृति कह देते हो, और आँख बंद करके उसे स्वीकार लेते हो।

क्या आप अपनी संस्कृति के प्रति सचमुच जाग्रत हैं? आप सिर्फ मुझसे प्रश्न मत कीजिये, मैं आप से यह प्रश्न पूछता हूँ। जो व्यक्ति अपना निर्णय खुद नहीं ले सकता है, अपने विश्वास को अपने जीवन का आधार नहीं बना सकता है, बल्कि दूसरों की आस्था को, दूसरों के चरित्र को, दूसरों के व्यवहार को अपने जीवन में अपनाता है, यह सोचकर कि वह उन्नत है, उससे बढ़कर बेवकूफ दुनिया में कोई नहीं है। भारत आज बेवकूफी के दौर से गुजर रहा है, बुरा नहीं मानना। लेकिन इस बेवकूफी के दौर को हम वैसा ही मानते हैं जैसे जल के ऊपर तेल बह जाता है और उसके बहने के पश्चात् फिर से जल दिखलाई देता है।

सम्यक् कृतेन इति संस्कृति:–जब जीवन के सभी व्यवहार सम्यक् रूप से सम्पन्न होने लगते हैं तब उस व्यवहार को कहते हैं संस्कृति। संस्कृति की शिक्षा देने के लिये जब तक हमारे समाज में साधु और संन्यासी हैं, भारत की संस्कृति का लोप कभी नहीं होगा। लेकिन जिस दिन साधु नहीं रहेगा, संन्यासी नहीं रहेगा उस दिन भारत की सभ्यता का नाश निश्चित है। सौ लोग पदार्थवादी हो सकते हैं,

लेकिन इन सौ पदार्थवादियों को एक अध्यात्मवादी ठीक कर सकता है। अगर इस भारतवर्ष में केवल एक साधु भी रहे हमारे जैसा, तो संस्कृति का लोप नहीं होगा। हमारे जैसा का मतलब मैं नहीं, मैं तो बहुत छोटा आदमी हूँ। हमारे जैसा का मतलब जो इस मार्ग पर चलता है, जानता है, समझता है और पुन: इस परम्परा, संस्कृति एवं संस्कार को जाग्रत करने के लिये प्रयत्नशील रहता है। वही होता है सच्चा साधु और संन्यासी। बाकी तो सब स्वार्थ के चक्कर में रहते हैं। हमारे आगे-पीछे तो कोई है नहीं, अगर हम मरेंगे तो कोई रोने वाला भी नहीं है। कहाँ मरेंगे, यह भी किसी को मालूम नहीं रहेगा।

साधु और संन्यासी अपने आपको सामाजिक वृत्ति से अलग रखकर समाज का अध्ययन करके उचित समय आने पर समाज में फिर विद्या का प्रचार करता है। ऐसा हम अपने इतिहास में बार-बार देखते हैं। समय-समय पर समाज के सामने कोई ऐसा व्यक्ति आता है जो समाज का प्रेरक और मार्गदर्शक बनता है, समाज की गाड़ी को फिर से पटरी पर ले आता है। हमारा देश अवतारों, सिद्धों और साधुओं का है, जहाँ पर एक आध्यात्मिक परम्परा जागृत और जीवित है। धन कमाने के लिये आप अमेरिका या अन्य विलायती देशों में जाते हो, पर अध्यात्म की शिक्षा पाने के लिये विश्व के लोग कहाँ जाते हैं? इसके लिये कोई अमेरिका या अफ्रीका नहीं जाता, बल्कि इस शिक्षा को प्राप्त करने के लिये केवल एक ही स्थान, भारत आते हैं। तब कौन कह सकता है कि हमारी संस्कृति का ह्रास हो रहा है? आपके भीतर भी वह आध्यात्मिक संस्कार जीवित है, केवल उसे प्रकट करने की आवश्यकता है।

इसलिये अगर आपको हिन्दुस्तान में अच्छे दिन लाने हैं तो अपने जीवन में संस्कृति को स्थान दें और उसके लिये आप प्रयासशील रहें। केवल यह कहते

रहना कि हमारे देश में संस्कृति समाप्त हो रही है और उसके लिये हम कुछ नहीं कर पा रहे हैं, यह आपकी अपनी व्यक्तिगत कमजोरी है। अगर आप अपने घर को बिगड़ते देखते हो और उसको रोकने का प्रयास नहीं करते हो तो दोष किसका है? जिसने मकान बनाया, उसका? या जो वहाँ रहता है उसका? दोष मकान के निवासी का होता है, क्योंकि मकान की देखभाल करना उसकी जिम्मेदारी होती है, इंजीनियर, आर्कीटेक्ट या कॉन्ट्रेक्टर की नहीं। आप इस राष्ट्र में रहते हो, इसकी जिम्मेदारी आप पर है। अगर हमारे राष्ट्र में सांस्कृतिक ह्रास की परिस्थिति है तो उसके जिम्मेदार भी आप हैं। अगर हम अपने राष्ट्र का उत्थान चाहते हैं तो उसके लिये प्रयत्न करना, पुरुषार्थ करना, वह भी आप की जिम्मेदारी है। दूसरों पर दोषारोपण करना सबको आता है पर स्वयं को देखना किसी को नहीं आता। जो व्यक्ति स्वयं को देख सकता है वही संस्कृति का निर्माण करने में सक्षम होता है।

स्वामीजी, आपके नेतृत्व में बिहार योग विद्यालय के लिए क्या योजनाएँ हैं? हमलोगों ने सुना है कि आप बिहार योग विद्यालय से निवृत्त होकर संन्यास पीठ का संचालन करने जा रहे हैं। क्या यह सच है, या दोनों का संचालन करेंगे? संन्यास पीठ का क्या कार्यक्षेत्र रहेगा?

हमारे गुरुजी ने हमलोगों को तीन संकल्प दिये। पहला संकल्प है योग का, जिसका मुख्य केन्द्र है मुंगेर और जहाँ गंगा दर्शन विश्व योगपीठ स्थापित है। दूसरा संकल्प सेवा का है और इसका मुख्यालय है रिखियापीठ, जहाँ पर आध्यात्मिक भाव से युक्त होकर दूसरों की सेवा करने का एक प्रयास किया जाता है। हमारे गुरुजी का तीसरा संकल्प है 'संस्कार', जो हमारे जीवन की सकारात्मक अभिव्यक्ति है।

इस प्रकार 'योग, सेवा, संस्कार' या 'साधना, सेवा, संस्कार', क्योंकि योग तो साधना ही है—ये तीन संकल्प हैं हमारे गुरुजी के। व्यक्तिगत परिवर्तन के लिये योग को अपनाना, समाज से जुड़कर समाज के लिये सेवा करना और अपने जीवन को संस्कारित करने के लिये प्रयास करना। इसके लिये अब संन्यास पीठ की स्थापना हो चुकी है और वहाँ पर अब निर्माण का कार्य चल रहा है। ये तीन अलग-अलग आश्रम हैं, दो मुंगेर में और एक रिखिया में।

रिखियापीठ की देखभाल कर रही हैं हमारी गुरुबहन, स्वामी सत्यसंगानन्द जी, जिन्हें लोग स्नेहवश स्वामी सत्संगी के नाम से पुकारते हैं। गुरुजी ने उन्हें जिम्मेदारी दी है कि रिखियापीठ में स्वामी शिवानन्द जी की तीन प्रमुख शिक्षाओं—सेवा, प्रेम और दान को आधार बनाकर आत्मभाव से हर व्यक्ति के साथ जुड़ो।

मुंगेर के दो केन्द्र हैं योग पीठ और संन्यास पीठ। हम पच्चीस वर्षों तक बिहार योग विद्यालय के कार्यों का संचालन करने के बाद सन् 2008 में संस्था की जिम्मेदारी तीसरी पीढ़ी को सौंपकर सेवानिवृत्त हो गये। लेकिन तीसरी पीढ़ी के लोगों ने कहा

कि हमें पाँच साल का समय दीजिये ताकि हम संस्था के कार्यों को, योग आंदोलन के कार्यों को समझ सकें, जान सकें और उसके अनुरूप अपने आपको तैयार कर सकें। इसलिए सन् 2009 से 2013 तक हमने बिहार योग विद्यालय में ही वास किया, लेकिन अलग रह करके। हमारा क्षेत्र संस्था से अलग है, जिसका आश्रम से कोई सम्बन्ध नहीं। हमारे क्षेत्र में विद्यार्थियों और अतिथियों की बात तो दूर, आश्रम के संन्यासियों का भी प्रवेश निषेध है। वे भी बिना हमारी अनुमति के उस क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर सकते।

वहाँ पर रहकर हम साधना, अनुष्ठान आदि करते हैं जो एक परमहंस संन्यासी के लिये शास्त्रों में निश्चित किये गए हैं। हमारे गुरुजी ने रिखियापीठ में जैसी साधना की थी, वैसी ही हम मुंगेर में करते हैं। आखिर उनसे विरासत में हमें क्या मिला है? संस्था मिली है क्या? नहीं, संस्था का संचालन तो कार्यकारिणी करती है, जिसके लोग बदलते रहते हैं। फिर विरासत में हमने अपने गुरु से क्या पाया? संन्यास और साधनात्मक तपस्या का जीवन जो उन्होंने जीया है, वही हमने उनसे विरासत में प्राप्त किया है। उसी के अनुसार हमें जीना है चाहे हम कहीं भी रहें। इन दोनों को हम छोड़ नहीं सकते हैं, न संन्यास को, न तपस्या को।

जब मैं सन् 2008 में सेवानिवृत्त हुआ तब गुरुजी से कहा कि आप मुझे भी अनुमति दे दीजिये ताकि मैं मुंगेर से निकल पड़ूँ, जैसे आप निकल गये थे। लेकिन उन्होंने कहा, 'नहीं, तुम्हें मुंगेर में ही रहना पड़ेगा। भले ही तुम आश्रम में मत रहो, लेकिन रहोगे मुंगेर में ही। संस्था से तुम्हारा कोई लेना-देना न रहे, लेकिन योग से अपना सम्बन्ध तोड़ना नहीं। योग के विकास और प्रचार का कार्य तुम करते रहोगे क्योंकि उसी से हमारी परम्परा की शिक्षाओं का प्रचार होगा।' फिर उन्होंने आगे आदेश दिया, 'मुंगेर आश्रम में पाँच वर्ष रहने के पश्चात् जब तुम संस्था का त्याग करोगे, तब तुम अगले स्थान पर चले जाना और वहाँ पर संन्यास पीठ की स्थापना करना, जहाँ से तुम आध्यात्मिक संस्कारों की शिक्षा समाज को प्रदान कर पाओगे। मुंगेर में जो लोग योग के लिये आते हैं वे कभी-कभी सप्ताह के अन्त में तुम्हारे यहाँ आकर सत्संग वगैरह भी कर लेंगे।'

औपचारिक जिम्मेदारियों से तो हम मुक्त हो गये सन् 2008 में और तीसरी पीढ़ी ने पाँच साल का समय जो हमसे माँगा था वह भी समाप्त हो गया सन् 2013 में। उस अवधि के समापन के समय हमने अपनी ओर से बिहार योग विद्यालय को अंतिम सेवा प्रदान की। विश्व योग सम्मेलन के रूप में उसकी स्वर्ण जयन्ती मनाना, वह बिहार योग विद्यालय के प्रति आखिरी सेवा है। उसके बाद अन्य कुशल लोग संस्था का काम बढ़ा रहे हैं। जैसे ही संन्यास पीठ का निर्माण कार्य सम्पूर्ण हो जायेगा मैं वहाँ चला जाऊँगा।

सम्मेलन के पश्चात् मैंने योग-यात्राएँ भी शुरू कर दी हैं, और यात्राओं के कारण अब बिहार योग विद्यालय से दूरी भी हो रही है। यह दूरी जरूरी भी है, क्योंकि परम्परा एक व्यक्ति की मनमर्जी पर नहीं चलती है। एक परम्परा को स्थापित करने के लिये चिंतन और निर्णय की आवश्यकता होती है। भविष्य में इस संस्था की क्या भूमिका होगी, भविष्य में योग की क्या भूमिका होगी, इस पर हम चिंतन कर रहे हैं।

योग हमारे जीवन का तो अभिन्न अंग है, साधना और तपस्या हमारे जीवन के अभिन्न अंग हैं, क्योंकि उन्हीं के द्वारा हम अपने संन्यास जीवन को सिद्ध कर पायेंगे। केवल गेरू पहनकर, फाइव स्टार होटल में रहकर हम संन्यासी नहीं बन सकते हैं, बल्कि गेरू पहनकर, पाँच अग्नियों में अपने आपको तपाकर, जलाकर फिर हम अपनी आत्मा के प्रकाश में आलोकित हो सकते हैं। वही संन्यासियों का लक्ष्य और उद्देश्य भी होता है।

हम चल पड़े हैं उस अनन्त यात्रा पर, जिस पर चलने के लिये हमारे गुरुजी ने कहा था। उस अनन्त यात्रा पर चलने के पूर्व संसार से जुड़ी अगर कुछ वासना थी, अगर कुछ अहंकार था, तो संस्था के माध्यम से वह भी पूर्ण हो गया। अपनी वासनाओं के बन्धन से, अपने अहंकार के बन्धन से हम मुक्त हो गये हैं। अब कोई इच्छा नहीं है, न खाने की इच्छा, न पहनने की इच्छा, न यात्रा की इच्छा, न स्थिर होने की इच्छा। इच्छा हो भी तो किस चीज की? अपनी कोई इच्छा नहीं है, सकली तोमार इच्छा। तुम मतलब ऊपरवाला, गुरु। तुम जैसा चाहोगे हम वैसा करने के लिये तैयार हैं। तुम बोलो सेवा करो, सेवा कर देंगे। तुम बोलोगे कि साधना करो, साधना कर देंगे। अब निर्णय तुम्हारा है क्योंकि हमने अपना जीवन समर्पित कर दिया है। एक बार जब जीवन समर्पित हो जाता है, तब फिर अपने बारे में क्यों सोचें? सोचने वाला कोई और होता है जो हमारे भाग्य का निर्माण करता है। जब हम अपने भाग्य के बारे में खुद सोचते हैं तो अपने भाग्य का निर्माण नहीं, विरोध करते हैं। विरोध हमने छोड़ दिया है और अब समर्पण की अवस्था में 'जाही विधि राखे राम ताही विधि रहिये। सीता राम सीता राम सीता राम कहिये।'

बच्चे बाल्यावस्था में योग को सरलता से अपना लेते हैं, लेकिन किशोरावस्था में नहीं करना चाहते हैं। इसके लिए कोई युक्ति बताइये।

हम तो जितने लोगों को जानते हैं, उन्होंने आज तक योग को नहीं छोड़ा है, चाहे वे युवा हों या वृद्ध। इसलिये हम इस प्रश्न से सहमत नहीं हैं। एक दृष्टान्त देता हूँ। लोग हमारे पास बच्चों को लेकर आते हैं और उनसे कहते हैं कि स्वामीजी को प्रणाम करो। बच्चा हमें देखता है कि ये कौन खड़े हैं। पहली बार हमें देख रहा है और पिता उसे कहता है प्रणाम करो। बच्चा कहता है नहीं, तो पिताजी या माताजी क्या करते हैं, बच्चे की गर्दन पकड़कर जबरदस्ती उसे नीचे करते हैं। शायद आपमें से कई लोगों ने भी ऐसा किया होगा। जब आप गर्दन पकड़कर बच्चे से किसी को नमस्कार करवाते हो तो क्या बच्चा उसे कभी स्वीकार करेगा? नहीं, वह हमेशा विरोध करेगा, क्योंकि यह दृश्य उसके मन में हमेशा रहेगा कि मेरी गर्दन पकड़कर मुझसे काम कराया गया। आप सोचते हो कि गर्दन पकड़कर हम बेटे से प्रणाम करवा देंगे तो गुरुजी का आशीर्वाद मिलेगा। यह सब बकवास है। मनुष्य की श्रद्धा और सरलता को क्यों नहीं देखते, अपने स्वार्थ को क्यों देखते हो?

लोग हमारे सामने बच्चे को लाकर एक घंटे तक लड़ाई करते रहते हैं, प्रणाम करो, प्रणाम करो। मैं तो उठकर भाग जाता हूँ, क्योंकि मुझे यह सब तमाशा बिल्कुल पसन्द नहीं है। मैं तो दो टूक जबाव देता हूँ कि अगर ऐसा करोगे तो मेरे पास नहीं आना। जोर-जबरदस्ती नहीं, बल्कि स्वेच्छा से हाथ जोड़कर प्रणाम करना। मेरा नारा तो आप लोग सुने होंगे, 'चार मिले चौसठ खिले, मिले बीस एक साथ। हरि भक्त से हरि भक्त मिले, बिहसे बहत्तर हजार।'

मैं यहाँ केवल यह बात कहना चाह रहा हूँ कि जिन बच्चों का हम अच्छे तरीके से संस्कार के साथ पालन-पोषण कर सकते हैं, वे युवा होकर भी अच्छे बालक रहेंगे और अपने अभिभावकों एवं गुरुओं का कभी विरोध नहीं करेंगे, उनके बतलाये गये आदर्श पर चलेंगे। इसलिए दोष युवाओं का नहीं, अभिभावकों का है क्योंकि उन्होंने सही तरीके से उन युवकों को पनपने का अवसर नहीं दिया, बल्कि उनके साथ जोर-जबरदस्ती करके उनके व्यक्तित्व में एक विकृति को लाए। विकृति लाने का दोष आपका है क्योंकि बालक आपके कर्मों और व्यवहार के कारण आपके निर्णयों का विरोध करते हैं। आप कहते हो कि आज के युवा बिगड़ रहे हैं। अरे आज के युवक नहीं, आप बिगड़े हुए हैं। लेकिन अगर हम सही तरीके से अपनी संतान को जीवन में सौम्यता, सम्मान और सजगता की पहचान करा सकते हैं तो वह बड़े होकर हमेशा हमारे जीवन का आधार और आलंबन बना रहेगा। इसलिये किसी को दोष देने की आवश्यकता नहीं, पहले स्वयं को देखो, तब दूसरों के बारे में बात करो।

–20 सितम्बर 2014, त्यागराज स्पोर्ट्स स्टेडियम, दिल्ली

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

सत्यम् गाथा–दिलेर डॉलफिन

पृष्ठ 24

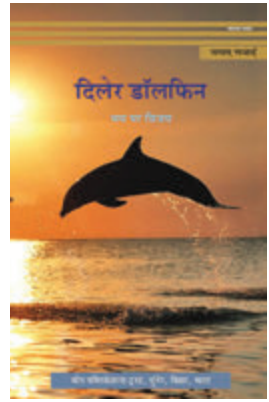

उपलब्ध

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती तथा श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को समर्पित सत्यम् गाथाएँ उनकी आध्यात्मिक एवं यौगिक शिक्षाओं को सरल, रोचक ढंग से दुनियाभर के लोगों तक पहुँचाने का माध्यम हैं।

यह गंगा नदी में रहने वाली एक भयग्रस्त डॉलफिन की कहानी है, जो अपने भय की वजह से जीवन का आनंद नहीं ले पाती। एक दिन वह एक युवा संन्यासी से मिलती है जिनसे वह अपने भय का सामना करना सीखती है। वह भली-भाँति जान लेती है कि भय मन की भ्रांति के सिवा और कुछ नहीं। इस शिक्षा को अपने जीवन में उतारकर वह अपने प्रबल शत्रु पर विजय प्राप्त कर लेती है और तब से वह दिलेर डॉलफिन के नाम से अन्य डॉलफिन्स की प्रेरक, मार्गदर्शक और आदर्श बन जाती है।

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें–
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 91-6344-222430, 6344-228603, 09304799615 फैक्स : 91-6344-220169

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

सत्यानन्द योग वेबसाइट

www.biharyoga.net

यह बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट है जिसमें सत्यानन्द योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, शिवानन्द मठ, सीता कल्याणम् महोत्सव तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट सम्बन्धी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

www.rikhiapeeth.in

यह वेबसाइट सभी साधकों के लिए स्वामी शिवानन्द जी की 'सेवा, प्रेम और दान' की मौलिक शिक्षाओं से जुड़े रहने का सुगम साधन है। यहाँ रिखियापीठ की गतिविधियों, कार्यक्रमों और सत्रों की जानकारी के अतिरिक्त प्रेरक सत्संग भी उपलब्ध हैं।

'यौगिक जीवन' स्वामी निरंजन के संग

www.biharyoga.net/living-yoga/ पर श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के उत्तराधिकारी स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती के मिशन सम्बन्धी लेख, संदेश एवं समाचार उपलब्ध हैं।

www.yogamag.net

योगा पत्रिका की इस आधिकारिक वेबसाइट पर पिछले तीस वर्षों की प्रतियों का संग्रह है। इस निरंतर वर्धमान संग्रह में विभिन्न श्रेणियों की खोज सुविधा भी उपलब्ध है।

आवाहन वेबसाइट

www.biharyoga.net/sannyasa-peeth/avahan/ पर संन्यास पीठ की द्वैमासिक पत्रिका, *सत्य का आवाहन* उपलब्ध है, जिसमें श्री स्वामी शिवानन्द, श्री स्वामी सत्यानन्द एवं स्वामी निरंजनानन्द की शिक्षाओं तथा संन्यास पीठ की गतिविधियों की जानकारी है।

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. HR/FBD/298/13-15
  Office of posting: BPC Faridabad
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

bar code

योगपीठ के सत्र एवं कार्यक्रम 2015-2016

अक्टूबर 1-जनवरी 25 2016	चातुर्मासिक योग अध्ययन सत्र (अँग्रेजी)
अक्टूबर 3-20	योग स्वास्थ्य रक्षा सत्र-मधुमेह (हिन्दी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
जनवरी 1 2016	श्री हनुमान चालीसा पाठ (108 बार)
फरवरी 1-मई 25	चातुर्मासिक योग अध्ययन सत्र (हिन्दी)
फरवरी 9-12	श्री यंत्र आराधना
फरवरी 13	बसंत पंचमी महोत्सव, बिहार योग विद्यालय का स्थापना दिवस
फरवरी 14	बाल योग दिवस
फरवरी 21-27	योग कैप्सूल-श्वास सम्बन्धी (हिन्दी)
मार्च 20-अप्रैल 3	योग कैप्सूल-पूर्ण स्वास्थ्य (हिन्दी)
अप्रैल 24-30	योग कैप्सूल-पाचन सम्बन्धी (हिन्दी)
जुलाई 15-18	गुरु पूर्णिमा सत्संग कार्यक्रम
जुलाई 19	गुरु पादुका पूजन
अगस्त 1-30	योग अनुदेशक सत्र (अंग्रेजी) (भारतीयों के लिए)
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 5 एवं 6 तारीख	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, मुंगेर, बिहार 811201

फोन : 06344-222430, 06344-228603, 9304799615 फैक्स : 06344-220169

वेबसाइट : www.biharyoga.net

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।